नं: ११

संस्थापक—श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी—महाराज मण्डलेश्वर

भगवन्नामावलि

हरहर महादेव शम्भो काशी-विश्वनाथ गङ्गे ।
साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव जय शङ्कर ।
हर हर शङ्कर दुःखहर शङ्कर सुखकर भयहर हर शङ्कर ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे ! नाथ नारायण वासुदेव ।
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण, श्रीमन्नारायण नारायण नारायण ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

वार्षिक मूल्य
भारत में केवल
हिन्दी २) गुजराती
सहित हिन्दी २॥)
विदेश में ४) रु०

शिवनामावलि

महादेव ! शिव ! शंकर ! शम्भो ! उमाकान्त ! हर ! त्रिपुरारे ! ।
मृत्युञ्जय ! वृषभध्वज ! शूलिन् ! गङ्गाधर ! मृड ! मदनारे ! ॥
हर ! शिव ! शंकर ! गौरीशं ! वन्दे गंगाधरमीशम् ।
रुद्रं पशुपतिमीशानं कलये काशीपुरिनाथम् ॥
जय शम्भो ! जय शम्भो ! शिव ! गौरीशंकर ! जय शम्भो ! ।

साधारण प्रति
भारत में ≡)
विदेश में ।-)

विषय सूची

धार्मिक प्रचार

कौन कहां हैं ?

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य अद्वैत ब्रह्मविद्या मार्तण्ड ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज मण्डलेश्वरजी कार्यवश इस साल काशी-मुक्तिक्षेत्रमें ही चातुरमास करेंगे।

पता—श्री विश्वनाथ आश्रम ठि० चुप्पेपुर
(शिवपुर रोड़) बनारस कैण्ट।

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य विद्याभास्कर ब्रह्मनिष्ठ श्री १०८ स्वामी नृसिंहगिरीजी महाराज मण्डलेश्वरजी इस साल कार्यवश काशी मुक्तिक्षेत्रमें ही चातुरमास कर रहे हैं।

पता—भुवनेश्वरमठ मिश्र पोखरा काशी

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य व्याकरण-न्याय-वेदान्त—सांख्य-योग तीर्थ वेदान्त वागीश श्री १०८ स्वामी भागवतानन्दजी महाराज मण्डलेश्वरजी लाहोर पंजाबमें धर्म प्रचार कर रहे हैं।

पता—शीतला मन्दिर लाहोर

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य विद्यामार्तण्ड श्री १०८ स्वामी विष्णुदेवानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर पंजाबमें धर्म प्रचार कर रहे हैं।

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य विद्याभास्कर ब्रह्मनिष्ठ श्री १०८ स्वामी परमानन्दजी महाराज मण्डले-श्वरजी बीकानेरमें धर्म प्रचार कर रहे हैं—

पता—वागड़योंकी बगीची—गोगादरवाजा बीकानेर

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ विद्याभास्कर श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज मण्डलेश्वरजी पंजाबसिंधकी तरफ धर्म प्रचार कर रहे हैं।

पता मु० मुलतान देहली गेट

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य गीता व्यास लोक संग्रही श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज मण्डलेश्वरजी काश्मीर होते हुए मथुरामें कुछ दिन धर्म प्रचार करते हुए ॐकारकी तरफ पधारेंगे—

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी महादेवानन्दजी महाराज मण्डलेश्वरजी हरिद्वारमें धर्म प्रचार कर रहे हैं।

पता—स्वामी भोलागिरि आश्रम हरिद्वार

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी मुरलीधरानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर नासिक दक्षिण की तरफ धर्म प्रचार कर रहे हैं।

गुजराती विभागके सम्पादक श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी मुकुन्दाश्रमजी महाराज गुजरात खम्भातकी तरफ धर्म प्रचार कर रहे हैं।

अहमदाबाद संन्यास आश्रमके अधिष्ठाता पूज्य श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज जामनगरमें धर्म प्रचार कर रहे हैं।

पता—भीड़ भंजन महादेव

सम्पादकजीका धर्म प्रचार

दार्शनिक सार्वभौम व्याख्यान केशरी श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी महेश्वरानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर "श्री विश्वनाथ सम्पादक" जी हरिद्वारसे काशी होते हुए गयाजी बैजनाथ आदि दर्शन कर चातुरमासके लिये कलकत्ता पधारे हैं। ४५ मूर्ति महात्मा आपके साथमें हैं पठन पाठन तथा कथा सत्संग धर्मप्रचारार्थ मण्डलीमें बराबर होता रहता है।

अहमदाबाद संन्यास आश्रममें स्वामी हरनाम गिरीजी महाराजका कथा प्रवचन होता है।

काशीमें महोत्सव

आषाढ शुक्ल पूर्णिमाके दिन बड़ी धूमधामसे गुरु पूर्णिमाका महोत्सव मनाया गया ब्रह्मचारी वर्गने व्यास चक्रमण्डल बड़ी सुन्दर रीतिसे बनाया था। व्यास पूजनके अनन्तर पूज्यपाद श्री १०८ श्री मण्डलेश्वर महाराजका सविधि पूजन आरती महात्मा तथा सद्गृहस्थोंने किया।

ॐ नमः शिवाय बैंककी नई शाखा

मु० सुकिया पोखरी (दार्जिलिंग) की तरफ ब्र० रामानन्दजीकी प्रेरणासे गतमासमें बड़े समारोहके साथ सभा कमेटी कर तथा शंकरजीका पूजन करके शाखा खोली गई है पं० गिरधारीलालजी ज्योषीजीने शाखाका कार्य सम्भाला है। मन्त्र लिखनेके नमूने तथा नोटिस व आरती आदि छपाये गये हैं करीब एक करोड़ मन्त्र लिखवा कर शिवार्पण करनेका आपका शुभ संकल्प हुआ है। मन्त्र द्विजाती भाइयोंको प्रेरणा कर ही लिखाया जायगा।

शाखाका पता—सुकिया पोखरी जि० दारजिलिंग बंगाल

(पं गिरधारीलालजी जोशी)

सूचना

जिन ग्राहकोंके पास चालू सालका दूसरा तीसरा अंक हो कार्यालयमें इन अंकोंकी आवश्यकता है जो अपना अंक भेजेंगे उनको इस अंकोंके बदलेमें जीवन निर्माणकला या पंचीकरण दिया जायगा।

पता—विश्वनाथ पत्र कार्यालय
मोहल्ला ढुण्ढिराज गणेश काशी।

ॐनमो विश्वस्वरूपाय, विश्वस्थित्यन्तहेतवे ।
विष्णवे विश्वनाथाय, विश्वेश्वराय ते नमः ॥

ॐ नमः शिवाय
ॐ नमो नारायणाय

ॐ नमः शिवाय
ॐ नमो नारायणाय

पुस्तक ४ } काशी, श्रावण १९९५ जुलाई १९३८ { अङ्क ६

मीराँकी प्रभु-प्रतीक्षा

घड़ी एक नहीं आवड़े* तुम दर्शन विनमोय ।
तुम हो मेरे प्राणजी, कैसे जीवन—होय ॥
धान न भावे नींद न आवे, विरह सतावे मोय ।
घायल सी घूमत फिरूँ, दरद न जाने कोय ॥
दिवस तो खाई गमाइया, रेन गमाई सोय ।
प्राण गमाया भूरतां नयन गमाया रोय ॥
जो मैं ऐसा जानती प्रीति किये दुःख होय ।
नगर ढंढोरा फेरती प्रीत करो मत कोय ॥
पंथ निहारूँ डगर बुहारूँ उभी मारग जोय ।
मीराँके प्रभु कबरे मिलोगे, तुम मिलिमाँ सुखहोय ॥

* अच्छी नहीं लगती ।

सन्त—लक्षण

अति कोमल अरु विमल रुचि, मानसमें मल नांहि ।
'तुलसी' रत मन हो रहे, अपने प्रियतम मांहि ॥
शील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुख राम ।
'तुलसी' रहिये यही रहनि, सन्त-जननको काम ॥
अहंवाद मैं तूँ नहीं, दुष्ट संग नहिं कोय ।
दुःखसे दुःख नहीं उपजे, सुखसे सुख नहिं होय ॥
अकिञ्चन इन्द्रिय-दमत, रटत राम इक तार ।
'तुलसी' ऐसे सन्त—जन, विरले या संसार ॥
जाके मनसे उठ गई, जगकी तृष्णा चाहि ।
मनसा वाचा कर्मणा 'तुलसी' बन्दत ताहि ॥

आश्चर्य

(लेखक—परमहंसब्रह्मनिष्ठ स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी महाराज)

(१)

छुपता कभी भी है नहीं, सबसे प्रथम है भासता ।
सबको उजाला दे रहा, रविचन्द्र आदि प्रकाशता ॥
सबसे परम प्रत्यक्ष है, हरदम दिखाई दे रहा ।
देखा न कोई आज तक आश्चर्य कैसा है महा ॥

(२)

कारण परम ब्रह्माण्डका, सच्चा स्वयं सबसे खरा ।
सबविश्व जिसमें कापता, सबमें रमा सबमें भरा ।
ज्यों सर्प के अध्याससे, सत् रज्जु छुपसी जाय है ।
सत्को छुपाया असत्ने, आश्चर्य यहही आय है ।

(३)

सबको सदाही जानता, फिरभी न कुछभी जानता ।
है आप अपना आप, फिर भी अन्य निजको मानता ॥
करता नहीं कुछभी कभी, करता सभी कुछ आप ही ।
है ब्रह्म दीखे है जगत् ,आश्चर्य आता है यही ॥

(४)

निश्चल सदा चलता नहीं, सबसे अधिक है दौड़ता ।
आगे सभीसे जाय है, पीछे सभीको छोड़ता ॥
सबमें ठसाठस है भरा, आवे नहीं ना जाय है ।
चलता हुआ सा दीखता, आश्चर्य यह ही आय है ॥

(५)

सब विश्वको सुख देय है, सुखका परम भण्डार है ।
सुखरूप है, सुखसिन्धु है सुखमात्र सुखका सार है ॥
सुख भूल सुखकी खोजमें, नरमूढ फिरता बाह्य है ।
नहिं देखता है आपको, आश्चर्य यह ही आय है ॥

(६)

ना देशसे ना कालसे, ही अन्त जिसका होसके ।
अद्वैत अवयवसे रहित ना एकसे हो दो सके ॥
होता वही दो तीन फिर संख्या रहित हो जाय है ।
अविभक्तके भी भाग हो, आश्चर्य यह ही आय है ॥

(७)

तीनों शरीरोंसे अलग, तीनों अवस्था से परे ।
विश्वादि तीनोंसे पृथक्, अभिमान किंचित् नाकरे ॥
ना ईश है ना जीव है, कारण नहीं ना कार्य है ।
तो भी सभी कुछ बन गया, कैसा महा आश्चर्य है ॥

(८)

वाणी विना ही बोलता है, वेद चार बनाय है ।
विनु हाथ रचता विश्व है, फिर विश्वको खाजाय है ॥
ऐसे अनोखे देवको, नरमूढ़ कैसे पा सके ।
भोला शरण ले ईशकी सोई उसे है पा सके ॥

(हरिगीत छन्द)

पूज्यपाद श्री स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराजके

सदुपदेश

'मिथ्या-वस्तुओंके प्रलोभनोंमें फँसा हुआ मनुष्य परमार्थ पथका पथिक नहीं होसकता '

'पहिले अपने उद्धारके लिये प्रयत्न करो, जो अपने उद्धारकी शक्ति नहीं रखता, वह दूसरोंका उद्धार नहीं कर सकता '

'कृत्रिमका परित्यागकर अकृत्रिमकी ओर, अनात्मको छोड़ कर आत्माकी ओर बहिर्मुखताको छोड़ कर अन्तर्मुखताकी ओर अग्रसर होना ही उद्धारका राज-मार्ग है ।'

'सिद्धान्तपर आरूढ़ हुए विना उद्धारका सम्भव नहीं हो सकता '

× × × ×

'जन्म-जन्मान्तरोंकी सञ्चितवासनाएँ बड़ी प्रबल हैं, सावधान साधकको भी जब उनसे अनेकोंबार पद-दलित होना पड़ता है, तो सामान्य मनुष्यकी बात ही क्या ?' उनको दूर करना सरल नहीं है, इसके लिये प्रचण्ड अभ्यास, परम श्रद्धा, तत्परता एवं सुदृढ़ संयमकी आवश्यकता है ।'

'यह संसार विविध द्वन्द्वमय विघ्न-बाधाओंसे संकुलहै, निष्ठुर शिला खण्डकी भाँति स्थिर रहकर उनका सामना करनेसे, एवं भूखे सिंहकी तरह लक्ष्य वस्तुकी तरफ समग्र शक्ति लगाकर आक्रमण करने से ही आत्म-कल्याण होना सम्भव है ।

× × × ×

महाभारतके उद्योगपर्वमें विदुरजीकी प्रेरणासे धृतराष्ट्रने सनत्सुजात- ऋषिसे प्रश्न किया था—

धृतराष्ट्र उवाच—

सनत्सुजात यदिदं शृणोमि, न मृत्युरस्तीति तव प्रवादम् ।
देवासुरा ह्याचरन्ब्रह्मचर्यममृत्यवे तत्कतरन्नु सत्यम् ॥

धृतराष्ट्र बोला—हे सनत्सुजात ! विदुरजीके द्वारा मैंने सुना है कि—'मृत्यु नही है' यह आपका मत है, क्या यह ठीक है ? यदि ऐसा ही है तो देवता और राक्षसगणने मृत्युसे बचनेके लिए ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए आत्मज्ञानके लिए क्यों प्रयत्न किया था? इन दो मतोंमें कौन सत्य है?

सनत्सुजात उवाच—

उभे सत्ये क्षत्रियाद्य ! प्रवृत्ते मोहो मृत्युः सम्मतो यः कवीनाम् ।
प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि तथाऽप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि ॥
प्रमादाद्वै असुराः पराभवन्न प्रमादाद् ब्रह्मभूता भवन्ति ।
नैव मृत्युर्व्याघ्र इवात्ति जंतून्न ह्यस्य रूपमुपलभ्यते हि ॥

सनत्सुजातने उत्तरदिया—हे क्षत्रिय श्रेष्ठ! मृत्युका अस्तित्व और नास्तित्व दोनों ही मत ठीक हैं । बहुत विद्वानोंकी सम्मति है कि—मिथ्याज्ञान रूप मोह ही मृत्यु है । परन्तु मैं अपनी सम्मतिसे प्रमादको ही मृत्यु कहता हूँ, अपने स्वाभाविक सच्चिदानन्द स्वस्वरूप ब्रह्मभावसे प्रच्युत होना ही प्रमाद है । और अप्रमाद ही अमृतत्व यानी मृत्युका नास्तित्व है, स्वाभाविक स्वस्वरूपमें प्रतिष्ठित होना ही अप्रमाद है । प्रमादसे ही असुरोंका पराभव हुआ था, और अप्रमादसे ही इन्द्रादिदेव ब्रह्मरूप हुए थे। व्याघ्रकी तरह मृत्यु प्राणियोंका भक्षण नहीं करता है, एवं इसका प्रमादसे पृथक् स्वरूप भी उपलब्ध नहीं है ।

× × × ×

अध्यास, विपरीतज्ञान एवं कर्तृत्वबुद्धि ही सभी प्रकारके अनर्थोंका मूल कारण है, उनके नष्ट करनेका एकमात्र उपाय है—आत्मज्ञान ।

'नान्यःपन्था विद्यतेऽयनाय ।'

आत्मज्ञान प्राप्तिका उपाय है—विवेक-सम्भूत वैराग्य। अतएव सभी शास्त्रोंमें वैराग्यकी वार-वार प्रशंसाकी गई है। भोग-स्पृहाके त्यागका नाम वैराग्य है। वैराग्यकी यतमान, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय, और वशीकार ये चार कहाए हैं। अतएव साधक भी चार प्रकारके होते हैं—

चतुर्धासाधको ज्ञेयो मृदुमध्याधिमात्रकः।
अधिमात्र तमः श्रेष्ठो भवाब्ध्युल्लङ्घनक्षमः॥

मृदु, मध्य, अधिमात्र, और अधिमात्रतम, ये चतुर्विध साधक हैं, इनमें अधिमात्रतम साधक सर्व श्रेष्ठ है, वह शीघ्रही भवसागरके उल्लंघन करनेमें समर्थ होता है। (क्रमशः)

भगवत् प्राप्तिका सरल साधन

(लेखक—भक्त रामशरणदास जी पिलखुवा)

ध्यान—

जब ही हो सकता है जब चारों ओरसे मनको हटा लिया जावे और केवल श्री भगवान श्याम सुन्दर में ही ध्यान हो। हम कलियुगी जीवोंके मन जहां आज कल पराई स्त्रियोंके चिन्तन करनेमें लगे हुए हैं, और न मालूम कहां २ सैर सपाटे लगाते फिरते हैं तो हम ध्यान क्या कर सकते हैं ?

दान—

दान भी हम नहीं कर सकते। हाल तो हमें अपने पेट भरनेको ही अन्न नहीं मिलता, और अगर हम दान भी करें तो हमें ज्ञान नहीं कि कौन दान लेनेका अधिकारी है और कौन नहीं। और किसको दान देने से पुण्य होगा और किसको देनेसे पाप होगा, आदि आदि वातें तब हम किसप्रकार भगवत प्राप्ति कर सकते हैं। पूज्यपाद श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराज हम कलियुगी जीवोंके लिये भगवत प्राप्तिका सरल साधन प्रकार वतलाते हैं—

न मिटै भव संकट दुर्घट है.
तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न विराग न ज्ञान कहूं,
सब लागत फोकट झूँट जटो॥
नट ज्यों जनि पेट कुपेटक को,
टिक चेटक कौतुक ठाट ठटो।
तुलसी जो सदा सुख चाहिय तो
रसना निशिवासर राम रटो॥

केवल श्रीभगवन्नाम जप कीर्तनसे सदाके लिये सुखी हो जावोगे, भगवानको प्राप्त कर लोगे। कुछ लोगोंका यह कहना है कि—जब सतयुग, द्वापर आदिमें ८६ हजार वर्ष तक तपस्या करनेपर भी भगवान नहीं मिलते थे तो भला खाली राम नाम, कृष्ण नाम, शिव नाम, लेनेसे भगवान क्योंकर मिल जायेंगे! सो हम उनसे यह पूछते हैं कि—भैया जब जाड़ेके दिन होते हैं तो तब तुम दस-दस कपड़े पहिनते हो, और गरम गरम चीज खाते हो फिर भी जाड़ा नहीं जाता, लेकिन गर्मीमें क्यों एक ही कपड़ेसे काम चल जाता है। सो वह समय तपस्या करनेका, योग यज्ञ करनेका था अब तो केवल एक नामके सहारेसे ही बेड़ा पार हो जाता है। जो योग यज्ञ कर सकें वह करें—एक प्रेमी संत कहते हैं—

जिनको रुची हो सो करे वेशक प्राणायाम।
यहां तो प्राण पुकारते घड़ी घड़ी घनश्याम॥
जिनको भावे सो करो निराकार का गान।
यहां तो मनमें रम रही राम नाम की तान॥
जिनको रुचता हो करे निराकार का ध्यान।
यहां तो कढ़ती ही नहीं मनसे मृदुमुसकान॥

इस लिये सब संशयोंको दूर करके प्रेमसे उठो,

बैठते, खाते-पीते, सोते जागते, चलते-फिरते हर समय श्रीश्रीभगवन्नाम जपिये, कीर्तन करिये। फिर तुम देखोगे कि सुख कहां हैं। इसीसे तुम्हारा बेड़ा पार हो जायेगा, और तुम यमराजके डंडे खानेसे बच जावोगे, और प्यारे श्यामसुन्दरके दर्शन पावोगे। इस श्रीभगवन्नाम कीर्तनसे ही पापीसे पापी मनुष्योंका उद्धार हो गया, और उनका सदाके लिये नाम हो गया। महर्षि वेदव्यासजी भी कलियुगमें कीर्तन ही बतलाते हैं—

हरेर्नाम, हरेर्नाम हरेर्नामैवकेवलम्।
कलौ नास्त्येव, नास्त्येव, नास्त्येव गतिरन्यथा॥

एक संत तो यहां तक कह रहे हैं—

और बरातीसे लगें, जहां लगि नाम अपार।
दुल्हा दुलहिन जानियों एक रकार मकार॥

वे कह रहे हैं कि ज्ञान, ध्यान, योग, यज्ञ, यह तो सैव बराती हैं। दुल्हा दुलहिन तो केवल रकार मकार ही हैं। अगर दुलहा दुलहिन न हों तो सब बारात किस काम की। अर्थात् अगर राम नहीं तो सब कर्म बेकार हैं। श्री गुरु नानकजी भी भगवन्नाम जपने वाले को ही सुखी बतलाते हैं—

नानक दुखिया सब संसारा।
सुखिया वही जो नाम अधारा॥

श्री श्री सन्त कबीरदासजी भी नामकी महिमा बतलाते हुये कहते हैं—

कबिरा सब जग निर्धना, धनवन्ता नहीं कोय।
धनवन्ता सोई जानिये, जाके राम नाम धन होय॥

राम नाम धन इकट्ठा करो और साहूकार हो जावो। तुम सच्चे साहूकार होगे, यमराजके दर्बारमें तुम्हारा मान होगा अपमान नहीं। सन्तोंने तो एक बारके राम नाम लेनेसे ही मुक्ति बतलाई है, जो हर समयमें लें तो क्या ही कहना। एक सन्त अपनी जिह्वा से कह रहे हैं—

आपने पराये सुन्दर सुहाये भोग,
तेहिको जिमाये ताते रसना पति जियो।
कहैं पदमाकर मैं तेरी ही कहि है करि,
एक दिना मेरी कहि एति मान लीजिये॥
अपनी जान जिह्वा मैं तोपै भाषत हूँ,
बोलत बिलम्ब एक क्षणको मत कीजिये।
जंगी जमराजके जासूसोंसे काम परै,
राम ही को नाम तू भले ही कह लीजिये॥

राम नाम कह लीजियो इसीसे तो बेड़ा पार है। कुछ लोग यह भी कह देते हैं कि-राम नाम से ही उद्धार हो जाता है तो हम मरते समय राम नाम लेलेंगे सो—

कोटि कोटि मुनि जतन कराही। अन्तकाल मुख आवत नाहीं॥

भला कोई लड़का यह कहने लगे कि मैं पहिलेसे पढ़ कर क्या करूँगा, इम्तहानके समय ही पढ़ लूंगा तो क्या उसकी यह बात माननीय हो सकती हैं। तुम्हें मालूम है कब यमराजका परवाना आयेगा? इसलिये पहिलेसे ही तइयार रहो, हर समय प्रभुका नाम लेते रहो। सन्त कबीरदासजीकी यह बात याद रक्खो—

नाम जपन्ता कुष्टी भला चुई चुई परे जो चाम।
कंचन देह किस काम की जहां न हरिको नाम॥

तुम नाम जपनेसे सच्चे सुन्दर हो जावोगे। तुम्हारा मनुष्य शरीर है, इसीलिये खूब भगवन्नाम को लूटो, और चौरासी लाख योनियोंके चक्करसे छूटो, अपने शरीरको खाने पीने विषयभोगोंमें न खोवो श्री गोस्वामीजी महाराज भी कहते हैं कि—नाम जपमें वह शक्ति है कि-भगवान भी वशमें हो जाते हैं। भगवान नाम प्रेमीके पीछे पीछे डोलते हैं—

सुमिरि पवन सुत पावन नामू।
अपने बस करि राखेऊ रामू॥

स्वयं परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने रहनेका स्थान जहां पर नाम कीर्तन होता है वहीं पर बतलाते हैं—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्रतिष्ठामी नारद ॥

मैं बैकुण्ठमें नहीं रहता और न मैं योगियोंके ही हृदयमें रहता हूँ। मैं वहां रहता हूँ कि-जहां पर मेरे भक्त मेरा कीर्तन करते हैं। स्वयं परमात्मा शंकर भी राम नाम जपते हैं और राम नाम लेकर ही वह कांल कूट भी पी गये थे। नामकी शक्ति अपार है। जितने भी सन्त हुये हैं सभी नाम प्रेमी थे, और सभीने नामकी महिमा गाई है। जैसे कि भक्त प्रहलाद, ध्रुव, हनुमान, अर्जुन, वाल्मीकि, तुलसीदास, सूरदास, गुरु-नानक, कबीरदास, चरणदास, दूलनदास, दादूदयाल, बुल्लःशाह, सुन्दरदास, नाभाजी, रैदासजी, नामदेव, ज्ञान-देव, सोपानदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास, नारा-यण स्वामी, हरिदास, श्री श्रीमन्महाप्रभु गौराङ्ग देव-जी, हित हरिवंश, मीरा वाई, दया वाई, सहजो वाई, आदि २ संत महात्माओं ने नामको महिमा गाई है। और नाम कीर्तनसे ही उन्हे श्रीभगवद्दर्शन हुए थे।

सो प्रेमियो तुमभी खूब प्रेमसे श्रीभगवन्नाम जपो, श्रीभगवतनाम कीर्तन करो। याद रक्खो पहिले पहिल तो तुम्हे ऐसा करते देखकर संसारके कीड़े तुम्हें ढोंगी बगला भगत, पागल आदि २ न जानें क्या-क्या कहैंगे तुम अगर इनकी बातोंमें आगये तो तुम्हारा उद्धार कभी भी नहीं होगा। और अगर तुमने इनकी कुछ भी परवाह नहीं की तो याद रक्खो कि कुछ दिनके बादमें कीर्तन करते करते तुम्हारा मन शुद्ध हो जायगा, और फिर तुम्हें इसमें वह आनन्द, वह सुख आने लगेगा कि-अगर तुम्हारे सर पर तलवार भी चलने लगेगी तो भी तुम इसे नहीं छोड़ेगे। श्री हरिदासजी को जब इस नामका चस्का लगा था तो क्या हुवा था? मुसलमानोंके बाजारमें कोड़े मारते ले जाने पर क्या ही सुन्दर सुवर्णाक्षरोंमें लिखे जानेवाले शब्द कहे थे—

टुकड़े टुकड़े देह हो, तनसे निकले प्रान।
तब भी मुख त्यागूँ नहीं हरिनामकी तान॥

यह आनन्द ही ऐसा है जिसके सामने और आनन्द सब फीके हैं। याद रक्खो जो तुम्हें पागल कहते हैं तुम उन पागल कहनेवालोंसे श्रीकृष्ण प्रेमकी मस्तीमें यह गावोगे और कहोगे—

इन्हीं बिगड़े दिमागोंमें भरे खुशियोंके लच्छे हैं।
हमें पागलवो समझे हैं, कि हम पागल ही अच्छे हैं॥

तब तुम यह भी कह उठोगे कि हां ठीक है 'भगव-न्नाम कीर्तन ही भगवत प्राप्तिका सरल साधन है और भगवन्नाम जपसे तुम्हारा सर्व श्रेष्ट यज्ञभी हो जायेगा, क्योंकि भगवान श्री कृष्णने गीताजीमें अपने श्री मुख से कहा है—'यज्ञानां जपयज्ञोस्मि।' और औरोंको-भगवन्नाम कीर्तनकी शिक्षा दोगे तो दानभी हो जायेगा। और भगवन्नाम जपनेसे मन एकाग्र हो जायेगा, तो 'योगश्च चित्तवृत्तिनिरोधः' योग भी हो जायेगा, और भगवान् गीतामें कीर्तन करनेवाले भक्त प्रहलादको 'प्रह्लादश्चास्मिदैत्यानां'। अपना स्वरूप बताते हैं। और आगे 'देवर्षीणांचनारदः' नारदजी भी कीर्तन करते ही थे। इसलिये प्रेमसे श्रीकृष्ण प्रेममें मस्त होकर, चूर होकर भगवन्नाम कीर्तन करो यही भगवत प्राप्तिका सरल साधन है—

खीझे देते परम पद, रीझे देते लंक।
अंधाधुंद दरबार है, तुलसी भजो निसंक॥

प्रभु तो दीनबन्धु दयालु हैं। जो उनका नाम जपता है वह तो उसे अपना ही समझ लेते हैं। यह भगवत प्राप्तिका सरलसाधन है।

भक्तनके जीवनधन, अवध बिहारी राम।
राधा गोपीप्राण धन, वृन्दावन विहारी श्याम॥

हम असफल क्यों ?

[लेखकः—श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य, कविरत्न]

[पूर्व प्रकाशितसे आगे]

विद्या-बुद्धिके भी वे आगार निर्दिष्ट हुए हैं, सभी कुछ उनके पास था कमी केवल सद्भावना-सद्विचार की थी, जिसके कारना उनका विनाश हुआ । इसी प्रकार के उदाहरण प्रायः प्रत्येक कालमें होते आये हैं । तो क्या हम इनसे यह नहीं सीख सकते कि—मनुष्य "सत्य-पवित्र विचार-रत्नके खो देनेसे दीन है । यही उसकी वास्तविक 'श्री' है, इसकी 'इति श्री' हो जाने पर उसके जीवनका अध्याय समाप्त हो जाता है" यही एक बात है, जिसका नाम सच्ची नागरिकता है। सद्भावना एवं शुभ-विचारके नागरिक देशके आदर्श होते हैं । ऐसे नागरिकोंको हम विना विद्यार्थि जीवन सुधारे बना ही नहीं सकते ।

आज भी हमारे सन्मुख जितने देशके वीर नेता हैं, वह सब क्या हैं ? उन्होंने योग्य शिक्षा प्राप्तकी है, अपने छात्र-जीवनको सुचारुरूपसे बनाया है तभी तो प्राण-पणसे देशकी विपत्तियोंको समूल उन्मूलित करनेमें परमतत्परतासे अग्रसर हो रहे हैं, और यथा साध्य सफल भी, इसी प्रकार अन्यान्य देशोंके दृष्टान्त भी हैं ।

"विद्यार्थी" का अपना कुछ नहीं, और सब कुछ अपना है । देशकी आंखें उसकी ओर हैं । इसलिये इस जीवनमें ही हमें जो कुछ शिक्षा दी जावेगी, वही भावि-जीवनके उत्थान किंवा पतनका हेतु सिद्ध होगी। बहुत सोच-समझ कर हमारी शिक्षा—दीक्षा होनी चाहिये ।

छात्र-जीवनमें सदाचार-व्रती रह कर देश-धर्मको सुधारनेके पवित्र उद्देश्यसे तपस्वी-जीवन व्यतीत करना अधर्मके हेतु कुविचार—दुराचारसे विमुख रहना, धैर्य और दृढ अध्यवसायसे अपना कर्तव्य-पालन करना, तनिकसे अपने स्वार्थके लिये दूसरोंकी हत्या न करना, दीन दुःखी, देवता तथा गुरुजनोंकी मान-रक्षा और अपने देश बन्धुओंकी ही उन्नति नहीं, प्रत्युत विश्व भरकी वास्तविक उन्नतिकी सत्य-शिव-सुन्दर कामना करना, आदि-आदि दिव्य-गुण हमें इसी जीवनमें सीख लेने चाहिये । स्नातक बनकर हम उच्च विचारके नागरिक बनेंगे । देशके गिराने अथच उठानेके हम उत्तरदाता होंगे । यही एक अवस्था है, जिसमें हम किसी भी शुभ-अशुभ कार्यमें निपुण बनकर सुधार या बिगाड़के पात्र बन सकते हैं ।

पर शोक है, इसी छात्र-जीवनकी कैसी कल्पनातीत अवहेलनाकी जा रही है ? न माता-पिता गुरुजनोंका ध्यान ही है, और न छात्रोंके हृदयमें ही इस प्रकारकी भावनाएं स्थान पाती हैं। राष्ट्रका निर्माण एक मनुष्यसे नहीं होता । प्रत्येक देशवासी इसके अंग हैं । एक अंग भी विकृत हो गया तो समस्त शरीर ही दूषित हो जाता है । इसी सिद्धान्तके बलपर केवल यदि विचारके साथ हम अपने जीवनको बनायें तो अवश्य सफलता देवीके कमनीय अङ्कके सुख-भोग हमें उपलब्ध होंगे ।

आज हमारे विद्यार्थियों में वे मतलबकी झूठीशान ने व्यर्थके बनाव-ठनावने दुराचार-अविचारने, अपव्यय आदि अन्यान्य विपद्बन्धुओंने अड्डा जमालिया है । उन्हें यह ध्यान ही नहीं कि-तुम किस ओर जा रहे हो, तुम्हारा लक्ष्य है क्या ?

अन्तमें सांसारिक-जीवन व्यतीत करनेका जब अवसर आता है, तो वे प्रत्येक कार्यमें असफल रहते हैं । कभी इधर कभी उधर निकम्मे और भार-भूत होकर अपने एवं औरोंके क्लेशके कारण बन जाते

हैं। आजकल दिन प्रतिदिन समाचार पत्रोंमें पढ़ा करते हैं कि–अमुक सफल बी० ए० एम० ए० अथवा अन्य किसी विषयका विज्ञ ने जीवनसे निराश हो कर आत्म–हत्या कर ली। भारतीय प्राचीन ग्रन्थोंमें जहां तक हमें ज्ञात है, कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता, जिसमें किसी स्नातकने अकर्मण्य एवं असफल होकर प्राणविसर्जन कर दिये हों। फिर हम भारत सन्तान होकर ऐसा जघन्य कृत्य क्यों करें। कर्मवीर बनना चाहिये।

यह कितनी लज्जाकी बात है ? इसका एक मात्र कारण है कि–विद्यार्थी–जीवनमें अनुचित व्यय करके अभ्यास बिगाड़ लेनेके कारण आज वह देशके कलङ्क बन गये। यदि आरम्भसे ही सादगी, सदाचार तथा दृढ़ अध्यवसायका अभ्यास किया जाता तो यह नौबत न आती।

मनुष्यके लिये असंख्य काम हैं। ईमानदारी और तत्परतासे किसी भी काममें सफलता प्राप्तकी जा सकती है। काम करनेमें लज्जा होनी ही नहीं चाहिये। बुराई तो बुराई ही में है। कायरता–और व्यर्थके बनाव–ठनावसे एक दम विमुख हो जाना चाहिये।

हमें कहते लज्जा और शोक होता है, कि—इस प्रकारके दुर्गुणोंसे युक्त विद्यार्थी क्या सच्चे नागरिक बन सकेंगे ! ये न अपना ही कल्याण कर सकेंगे और न किसी और का ही !

"आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।"

'आचारः परमोधर्मः।'

इत्यादि वाक्य आज किस दुर्दशाका अनुभव कर रहे हैं; यह किसी भी सहृदयसे छिपा नहीं है।

माना कि अपने देशकी आज दुरवस्था है, सहसा विद्या–मन्दिरोंका सुधार नहीं किया जा सकता। पर क्या साधारण सी बातें भी विद्यार्थी–वर्ग नहीं सीख सकता। अभीसे अभ्यास करेंगे तो सुधार हो सकेगा. अपने पैरों पर खड़े होनेकी आदत डालनी चाहिये। हमें दूसरोंके दुर्गुणोंको नहीं सीखना चाहिये। अपनी उन्नति करनेके लिये कौन लालायित नहीं होता। सदा-विचारसे रहना चाहिये कि हमारे उत्थान एवं पतनका उत्तर दायित्व हम पर ही है।

हमारे अपने विचारसे हम असफल क्यों ? इस प्रश्नका उत्तर है–योग्य नागरिकका अभाव और उसका सुधार विद्यार्थी–जीवनको सुन्दर बनाये बिना असम्भव नहीं तो दुःसम्भव अवश्य है। उत्साह, सदाचार, कर्तव्य पालन आदि दिव्यगुण किसी भी राष्ट्र के अभ्युदयके चिन्ह हैं। यह नहीं तो कुछ नहीं। इस लिये कमसे कम जब तक देशके नेताओंका ध्यान इधर आकृष्ट हो, तबतक विद्यार्थी लोग ही इस पर विचार करें, और अपना तथा दूसरेका कल्याण करनेमें तत्पर हो जावें।

शुभमस्तु सर्वेषाम् !

अभाव

जानकी के पास यदि होती एक माचिस तो, वाटिका अशोक में सशोक-त्रास पाती क्यों ?
'फायर-बिग्रेड' यदि रावण के पास होता, कपि के जलाये स्वर्ण-लंका जल जाती क्यों ?
'टेलीफोन' होता जो द्वारिका से मथुरा को, कृष्ण के वियोग में तो राधा बिलखाती क्यों ?
मोटर कहीं "नाथ" मिल जाती शीतला को जो, गदहे गरीब को तो वाहन बनाती क्यों ?

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यपूज्यपादश्रीसर्वज्ञात्ममुनिप्रणीतम्

संक्षेप-शारीरकम्

पूर्व प्रकाशितसे आगे

दोषस्य व्यभिचारस्थलमाह—

दोषका व्यभिचारका स्थान कहते हैं—

विषयकरणदोषान्न भ्रमः संविदि स्या—दपि तु भवति मोहात्केवलादेवमेव ।
भगवति परमात्मन्यद्वितीये विचित्रा, द्वयमतिरियमस्तु भ्रान्तिरज्ञानहेतुः ॥३०॥

ज्ञानमें वेद्यत्व अनित्यत्वादिरूप भ्रम, सादृश्यादि विषयदोषसे तथा काचादि करणदोषसे नहीं होता है, किन्तु एकमात्र अज्ञानसे ही होता है । इसीप्रकार अद्वितीय-भगवान् परमात्मामें यह विचित्र द्वैतबुद्धिरूपी भ्रान्ति, केवल अज्ञानरूप कारणसे ही होती है ॥३०॥

विषयेति । विषयदोषः सादृश्यादिः, करणदोषः काचादि । तत्र संविदि=प्रमाणफले घटादिज्ञाने यः परेषां वेद्यत्वादिभ्रमः स तावद्विषयदोषात्करणदोषाद्वा न संभवति, संविदः स्वप्रकाशत्वेनाविषयत्वात्करणागोचरत्वाच्च । अस्तु प्रमातृदोषादेवेति चेत्, तर्हि दोषान्तरासम्भवात् प्रमात्रभिव्यक्तान्मोहादेवेति वक्तव्यं तच्चास्मदिष्टमेवेत्याह—अपि त्विति । तत्र मोहमात्रजत्वसिद्धौ तद्वत्प्रकृतेऽपि मोहैकनिमित्तता साधनीयेत्याह—एवमिति । यथा संविदि वेद्यत्वादिधीर्भ्रमस्तथा परमात्मनि द्वैतबुद्धिरपि यतो भ्रान्तिरतोऽज्ञानहेतुरस्त्वित्यन्वयः ।

अज्ञानजत्वं संभावयति—विचित्रेति । भिन्नाभिन्नत्वसदसत्त्वादिविचारासहत्वेनानिर्वचनीये-

सादृश्य आदि, विषय दोष है, काच आदि, नेत्रादि करण दोष है । संवित् यानी प्रत्यक्षादिप्रमाणोंका फलरूप घटादिज्ञानमें, अन्यवादियोंको वेद्यत्व अनित्यत्वादिरूप जो भ्रम है, वह विषय दोषसे तथा करणदोषसे सम्भावित नहीं है, क्योंकि—स्वप्रकाश होनेके कारण संवित् अविषय (अवेद्य) है, तथा इन्द्रियोंका भी विषय नहीं है ।

शंका—अस्तु विषय व करणदोषसे पूर्वोक्त भ्रमका सम्भव नहीं है तो न सही, परन्तु प्रमाता (जीव) के दोषसे पूर्वोक्त भ्रमका सम्भव होगा ?

समाधान—तब विषयादिके दोषोंका सम्भव न होनेके कारण प्रमातामें अभिव्यक्त अज्ञानसे ही पूर्वोक्त भ्रमका सम्भव कहना होगा सो हमको अभिमत ही है।

जैसे ज्ञानमें वेद्यत्वादिका भ्रम केवल अज्ञान जन्य सिद्ध हुआ है, तद्वत् प्रकृतस्थलमें भी एकमात्र अज्ञानको ही भ्रान्तिका निमित्त सिद्ध करना चाहिये, यह कहते हैं—एवमिति । जैसे ज्ञानमें वेद्यत्वादि बुद्धि भ्रमरूप है, तथा परमात्मामें भी द्वैत बुद्धि भी भ्रमरूप है, जब द्वैतबुद्धि भ्रमरूप है तब उसका कारण भी केवल अज्ञान ही रहो यह अन्वय है ।

'द्वैतबुद्धि अज्ञानसे जन्य होसकती है' यह दिखाते हैं-विचित्रेति । भिन्नत्व, अभिन्नत्व, सत्व, असत्व आदि* विचारको न सह सकनेके कारण यह

*यदि यह द्वैत प्रपञ्च, सद्ब्रह्मसे भिन्न असत् है, तो वंध्या पुत्रकी तरह इसकी प्रत्यक्ष प्रतीति न होनी चाहिये । यदि सद्‌ब्रह्मसे अभिन्न सद्रूप है । तो इसका ब्रह्म ज्ञानसे बाध नहीं होना चाहिये, यह भिन्नाभिन्नत्वादि विचारका असहन है ।

त्यर्थः। भ्रान्तित्वसाधकमाह–अद्वितीये द्वयमतिरिति। अतस्मिंस्तद्बुद्धिरित्यर्थः। इयमिति साक्षिसिद्धत्वमाह। भगवतीत्यनेन महामहिमत्वात्प्रपञ्चरचनासामार्थ्यं सूचितम्। अस्त्विति समर्थने लोट्। अज्ञानजत्वं शक्यसमर्थनमित्यर्थः। एवं सादृश्यकरणदोषयोर्व्यभिचार उक्तः। संस्कारोऽपि व्यभिचारी, शुक्तिरजतादिवैशिष्टयस्य प्रागननुभूतस्यापि भ्रमविषयत्वादिति स्पष्टत्वान्नोक्तम्॥३०॥

द्वैतबुद्धि अनिर्वचनीय है। भ्रान्तित्वका साधक कहते हैं—अद्वितीये द्वयमतिरिति। अर्थात् द्वैतरहित अद्वितीय वस्तुमें द्वैतबुद्धि ही भ्रान्तित्वकी साधक है। 'द्वैतबुद्धि साक्षीसिद्ध है' इसको सूचन करनेके लिये 'इयं' यह प्रत्यक्षवाचक पद कहा। महामहिमाशाली होनेके कारण प्रपञ्चरचनाका सामर्थ्य 'भगवान्' पदसे सूचित किया। 'अस्तु' यह लोट्लकार समर्थन अर्थमें है (शकि लोट् च) अर्थात् 'भ्रान्ति अज्ञानजन्य है' इस सिद्धान्तका समर्थन शक्य है। इसप्रकार अध्यासमें सादृश्य व करणदोषका व्यभिचार कहा। संस्कार भी व्यभिचारी है—क्योंकि—शुक्तिरजतादिओंका वैशिष्ट्य (सम्बन्ध) प्रथम अनुभूत नहीं है, तथापि वह संस्कारके विनाही भ्रमका विषय होता है, यह अत्यन्त स्पष्ट होनेके कारण ग्रन्थकारने नहीं कहा॥ ३०॥

इदानीं परस्पराध्यासे सति आत्मनोऽप्यनात्मन्यध्यस्तत्वेन बाध्यत्वात् निरधिष्ठानं सच्छून्यं जगत्स्यादित्याशङ्क्य अज्ञातस्य बाधावधेरनध्यस्तस्य च शिष्यमाणत्वान्नोक्तदोष इत्यभिप्रेत्याह–

शंका–आत्मा और अनात्माका परस्पर अध्यास सिद्ध होनेपर आत्मा भी अनात्मामें अध्यस्त होनेके कारण बाध्य हो जायगा, तब अबाधित अधिष्ठानसे रहित, पारमार्थिक सत् वस्तुसे शून्य, जगत् होगा?

समाधान–अज्ञात, (अज्ञानका विषय) बाधका अवधि, अनध्यस्त ब्रह्मतत्त्वको परिशिष्ट रहनेके कारण पूर्वोक्त दोष नहीं है, इस अभिप्रायको लेकर कहते हैं–

संसिद्धा सविलासमोहविषये वस्तुन्यधिष्ठानगी-
र्नाधारेऽध्यसनस्य वस्तुनि ततोऽस्थाने महान्संभ्रमः
केषांचिन्महतामनूनतमसां निर्बन्धमात्राश्रयात्,
अन्योऽन्याध्यसने निरास्पदमिदं शून्यं जगत्स्यादिति ॥ ३१ ॥

रजतादि कार्य सहित अज्ञानसे आवृत्त वस्तुमें ही अध्यस्त रजतादिके अधिष्ठानकी संज्ञा प्रसिद्ध है। इदमंशरूप आधारवस्तुमें अधिष्ठान-संज्ञा प्रसिद्ध नहीं है। इसलिये किसी किसी विवेक रहित बड़े पण्डितोंको आग्रहमात्रके बलसे 'आत्मा अनात्माका परस्पर अध्यास माननेपर यह जगत् अधिष्ठान रहित शून्य हो जायगा' यह जो महान् भ्रम है, वह सर्वथा अयुक्त है॥ ३१॥

संसिद्धेति। विलसति=व्यक्तीभवति मोहोऽनेनेति विलासो मिथ्यारजतादिः। ततश्च, यतः सविलासाज्ञानावृते वस्तुनि शुक्त्यादावधिष्ठान-संज्ञा प्रसिद्धा, अधितिष्ठति ह्येतं सकार्यो मोह इति। स च नाध्यस्तोऽतोऽयमस्थानेऽविषयेशून्यत्वापादनसंभ्रम इत्यर्थः। ननु यदाधारमारोप्यं भासते, तदधिष्ठानं, तच्चारोप्येऽध्यस्तमेव, अन्यथा परस्पराध्यासो न स्यादित्यत आह–नाधार इति। अध्यस्तस्याधारत्वेन भासमाने शुक्तीदमंशे नाधिष्ठानगीरित्यर्थः।

किं च शबले संसृष्टतयाऽध्यस्तोऽधिष्ठानांश आधारः। तदुक्तम्–'अतद्रूपोऽपि तद्रूपेणारोप्यबुद्धौ स्फुरन्नाधारः' इति। नचासावधिष्ठानं भवितुमर्हति परस्पराश्रयात्, अधिष्ठाने सत्यध्यासोऽध्यासे सत्यधिष्ठानमितीति भावः। यद्वा अन्योऽन्याध्यासे निरास्पदं सच्छून्यं जगत्स्यादिति तर्केण

प्रकट होता है अज्ञान जिससे उसका नाम है विलास, अर्थात् मिथ्यारजतादि। 'कार्यसहित अज्ञान जिसमें अधिष्ठित (आश्रित) होकर रहता है' इस व्युत्पत्तिसे विलास सहित अज्ञानसे आवृत्त शुक्त्यादि वस्तुमें ही अधिष्ठान संज्ञा प्रसिद्ध है। वह अधिष्ठान अध्यस्त नहीं है, इसलिये अस्थाने-अर्थात् शून्यत्वप्रसक्तिका भ्रम निर्विषयक है व अयुक्त है।

शंका–जिस आधारमें अध्यस्त प्रतीत होता है, वह उसका अधिष्ठान है, और वह अधिष्ठान भी अध्यस्तमें आरोपित है, अन्यथा (अध्यस्तमें अधिष्ठानका आरोप न माननेपर) अन्योऽन्याध्यास सिद्ध न होगा।

समाधान–अध्यस्तके अधाररूपसे प्रतीत, शुक्तिके इदं अशमें अधिष्ठान संज्ञा प्रसिद्ध नहीं है, अर्थात् आधारसे अधिष्ठान पृथक् वस्तु है।

और विशिष्टमें संसृष्टरूपसे अध्यस्त अधिष्ठानका इदमंश ही आधार है। सो कहा है–"वस्तुतः अध्यस्त न होनेपर भी अध्यस्त रूपसे अध्यस्त ज्ञानमें जिसका भान होता है, वह आधार है।" ऐसा आधार 'इदं रजतम्' इत्यादि अध्यस्त स्थलमें 'इदं' अंशही है, यह इदं अंश, अधिष्ठान होनेके योग्य नहीं है, क्योंकि 'अधिष्ठान सिद्ध होने पर अध्याससिद्धि, और अध्याससिद्ध होनेपर अधिष्ठानसिद्धि, इसप्रकारका अन्योऽन्याश्रय दोष होवेगा, आधार (इदं अंश) में अधिष्ठानतासिद्ध नहीं हो सकती है, आधार (सामान्य अंश) के ज्ञानसे अध्यासकी उत्पत्ति होती है, अधिष्ठान (शुक्तित्वादि विशेष अंश) के ज्ञानसे अध्यासकी निवृत्ति होती है। अतः इदं अंश आधार, अधिष्ठान नहीं हो सकता है। अध्यासकालमें आधार ज्ञात रहता है, अधिष्ठान अज्ञात-रहता है, यह भाव है।

अथवा 'अन्योऽन्याध्यास माननेपर यह जगत् अधिष्ठानसे रहित शून्य हो जायगा' इस तर्कसे अद्वैत-

केषांचित् वादिनं जेतुं महानयं संभ्रम = उत्साहोऽस्थाने नयुक्तमित्यर्थः। संभ्रमे हेतुमाह—महतामिति। अनूनं तमोऽज्ञानं येषां तेषां मध्ये महतां शून्यवादिनां निर्बन्धः = परमतखण्डने श्रद्धातिशयः। यद्वा निरास्पदमिदं चोद्यं निर्विषयमित्यर्थः॥ ३१॥

वादी वेदान्तीको जीतनेके लिये द्वैतवादियोंका यह महा संभ्रम (उत्साह) अयुक्त है। संभ्रममें कारण कहते हैं—महतामिति अनून (अत्यधिक) है तम यानी अज्ञान जिन्होंमें, उनके मध्यमें जो बड़े (शून्यवादी) हैं, उनका अन्यके मतके खण्डनमें श्रद्धातिशय निर्बन्ध (आग्रह) मात्र है। अथवा—यह पूर्वोक्त चोद्य (शंका) निरास्पद (निर्विषय) है॥ ३१॥

नन्वधिष्ठानमेवाधारः तदाश्रयविषयाज्ञानकार्यस्याध्यस्तस्यान्याधारत्वायोगात्, अतः कथमुक्तरीत्याशून्यतोद्धार इत्याशङ्क्याह—

शंका—अधिष्ठान ही आधार है, अधिष्ठानसे आधार पृथक् वस्तु नहीं हो सकती है, क्योंकि—अधिष्ठानमें रहनेवाला एवं अधिष्ठानको ही विषय (आवृत्त) करनेवाला, जो अज्ञान है, उसके कार्य अध्यस्त का अधिष्ठानसे अन्य आधार नहीं हो सकता है; अतः पूर्वोक्तरीतिसे (अधिष्ठानसे आधारको पृथक् मानकर) शून्यताका उद्धार कैसे हो सकता है ? निम्नश्लोकसे इस शंकाका समाधान कहते हैं—

अधिष्ठानमाधारमात्रं यदि स्यात् प्रसज्येत सत्यं तदा चोद्यमेतत्।
नचैतत्सकार्यस्य मोहस्य वस्तु-न्यधिष्ठानगीर्गोचरे लोकसिद्धा॥ ३२॥

यदि आधार ही अधिष्ठान होता तो यह शून्यत्वापादनरूप शंका सत्य होती, परन्तु आधार अधिष्ठान नहीं है, क्योंकि कार्यसहित अज्ञानसे आवृत्त-वस्तुमें ही अधिष्ठान संज्ञा लोकमें प्रसिद्ध आधार आवृत्त नहीं है॥ ३२॥

अधिष्ठानमिति। यन्निष्ठतया मिथ्यारजतादि भासते सोऽधिष्ठानसामान्यांश आधार इत्युक्तम्। तन्मात्रमेव चेदधिष्ठानं स्यात्तत्सत्यं शून्यता प्रसज्येत न तु तथेत्यर्थः। यतः सकार्यमोहविषये विशेषांश एवाधिष्ठानगीर्लोकसिद्धा, तद्बोधादेव हि भ्रमो

अधिष्ठानमिति। जिसमें मिथ्यारजतादिका भान होता है, वह अधिष्ठानका सामान्य (इदं) अंश ही आधार है, यह प्रथम कह आये हैं। आधारमात्र ही यदि अधिष्ठान होता तो शून्यता दोषकी प्रसक्ति ठीक होती, परन्तु आधारमात्र अधिष्ठान नहीं है। कार्यसहित अज्ञानसे आवृत्त, शुक्तिआदि विशेष अंशमें ही अधिष्ठान संज्ञा लोकमें प्रसिद्ध है। उस विशेषांशरूप अधिष्ठानके ज्ञानसे ही भ्रम की निवृत्ति होती है। 'जो

निवर्तते तेन 'य एव लौकिकाः' इति न्यायेन तथैव शास्त्रेऽपीति नोक्तदोष इत्यर्थः ।

अत्र केचित् 'अध्यस्तमेव हि' (श्लो० ३६) इति न्यायात् भ्रमविषय इदमंशः सत्येदमंशाद्भिन्नः, सचाविद्यावृत्तिगोचरो बाध्यः । शुक्तीदमंशस्तु-प्रमाणवृत्तिगोचरो न बाध्यः । नचेदन्ताद्वयविवेकापत्तिः, विवेचकस्य शुक्तित्वादेरावृतत्वात् तद्विवेकाग्रहस्याध्यासहेतुत्वाच्च । नचाविद्यावृत्त्या शुक्तीदन्ताऽभेदेनैव रजतं बोध्यतां किं मिथ्येदन्तयेति वाच्यम् । प्रमाणवृत्त्यविद्यावृत्त्योर्विरुद्धयोरेकत्र कार्येऽप्रवृत्तेः । न चाविद्यावृत्तेर्नेदन्त्वंविषयः 'रजतप्रतीतिरिदमि प्रथते' (श्लो० ३५) इत्यादिविरोधादिति वदन्ति ।

तन्न, उक्तरीत्या शुक्तीदन्तासंसर्गाध्यासेनैव 'इदं रजतम्' इत्यध्यासोपपत्तौ मिथ्येदन्त-

पद पदार्थ लोकमें प्रसिद्ध हैं, वे ही शास्त्रमें भी प्रसिद्ध हैं' इस न्यायसे प्रकृतस्थलमें भी कोई दोष नहीं है, यह अर्थ है ।

यहां कोई शंका करते हैं—

शंका—'भ्रममें अध्यस्तका ही भान होता है' इस न्यायसे भ्रमका विषय इदं अंश, सत्य इदमंशसे भिन्न है, परन्तु भ्रमविषय-इदमंश तो अविद्यावृत्तिका विषय होनेसे बाध्य है । शुक्तिका इदमंश अन्तःकरणरूप प्रमाणवृत्तिका विषय होनेसे बाध्य नहीं है ।

सिद्धान्ती—तब तो दोनों इदमंशोंका पृथक् पृथक् भान हो जायगा ?

पूर्ववादी—पृथक्-भानके प्रयोजक शुक्तित्वादिको आवृत होनेसे, तथा दोनों इदमंशोंके विवेक (पृथक्त्व) ज्ञानके अभाव को ही अध्यासका कारण होनेसे, पृथक् पृथक् भान नहीं होता है ।

सिद्धान्ती—अविद्यावृत्तिसे शुक्तिके इदमंशसे अभिन्नही रजतका भान होओ, मिथ्या इदमंशकी कल्पनाका क्या प्रयोजन है ?

पूर्ववादी—यह नहीं कहना चाहिये, क्योंकि—इदमाकार प्रमाणवृत्ति, और रजताकार अविद्यावृत्ति, ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं, अतः 'इदंरजतं' इस ज्ञानरूप एक कार्यमें ये दोनों एक साथ प्रवृत्त नहीं हो सकते हैं । और 'इदमंशमें रजतकी प्रतीति होती है' इत्यादि ग्रन्थके साथ विरोध होनेके कारण 'अविद्यावृत्तिका इदमंश विषय नहीं है' यह भी नहीं कह सकते हैं, किन्तु अविद्यावृत्तिका सत्य इदमंशसे भिन्न कल्पित इदमंशही विषय है ?

समाधान—पूर्वोक्त शंका ठीक नहीं है । क्योंकि—पूर्वोक्तरीतिसे शुक्तिकी इदन्ताके संसर्गाध्याससे ही 'इदं रजतम्' इस अध्यास की उपपत्ति हो जाती है, तब

कल्पने मानाभावाद्गौरवात् 'किञ्च' इत्युत्तर-श्लोकविरोधाच्च। 'अध्यस्तमेव हि' इति स्वरूपेण संसृष्टतया वाऽध्यस्तमेव भ्रमविषय इत्यर्थः। प्रमाणवृत्यविद्यावृत्योरेकस्फुरणेनैककार्यत्वस्योपपादितत्वात्। चित्सुखाचार्यैरपि 'इदन्तासंसर्गोऽध्यनिर्वचनीयः' इत्युक्तं नेदन्त्वमिति दिक् ॥ ३२ ॥

मिथ्या इदन्ताकी कल्पनामें कुछ प्रमाण नहीं है, प्रत्युत गौरव है। तथा 'किञ्च' इस उत्तर श्लोकसे भी विरोध होता है। 'अध्यस्तका ही भ्रममें भान होता है' इसका स्वरूपसे तथा संसृष्टरूपसे अध्यस्त ही भ्रमका विषय है' यह अर्थ है। प्रमाणवृत्ति तथा अविद्यावृत्तिमें प्रतिबिम्बरूप एक स्फुरणकी उत्पत्ति होनेसे एक कार्यकारित्वका हम उपपादन कर आये हैं। चित्सुखाचार्यजीने भी कहा है—इदन्ताका संसर्ग अनिर्वचनीय (अध्यस्त) है, इदन्ता अनिर्वचनीय नहीं है, यह दिशा है ॥३२॥

इदानीमाधारावष्टम्भेनापि सत्यानृतमिथुनीकरणतया संसर्गबाधेऽप्याधारस्वरूपाबाधाच्छून्यता ऽऽपत्तिमपहस्तयति—

अब आधारका अवलम्बन करके भी सत्य और मिथ्याका मिथुनीकरण (युगलीकरण) होनेके कारण सम्बन्धका बाध होनेपर भी आधारके स्वरूपका बाध न होनेसे शून्यतापत्तिका खण्डन करते हैं—

किं चानृतद्वयमिहाध्यसितव्यमिष्टं स्याच्चेत्तदा भवति चोद्यमिदं त्वदीयम्।
सत्यानृतात्मकमिदं मिथुनं मिथश्चे–दध्यस्यते किमिति शून्यकथाप्रसङ्गः ॥३३॥

और अन्योऽन्याध्यासमें दोनों ही यदि अध्यस्त होते तो आपकी शून्यताकी शंका प्राप्त होती, परन्तु यहां तो सत्य और मिथ्याका परस्पर मिथुन अध्यस्त होता है, तब शून्यताका प्रसङ्ग कैसे आ सकता है ॥ ३३ ॥

किञ्चेति। इहान्योऽन्याध्यासे यदि अनृतद्वयमेव परस्परात्मतयाऽध्यसितव्यमिष्टं चेत् स्यात्तदा शून्यता प्रसज्येत, द्वयोरपि बाध्यत्वात्। न चैवं, किन्तुसत्यं प्रत्यक्, अनृतं परागर्थः स्वरूपतोऽप्यध्यस्तत्वात् तयोर्मिथोऽध्यासः, प्रतीचः परावसंसृष्टत्वाकारेण बाध्यत्वेऽपि स्वस्वरूपेणसत्यत्वान्न शून्यप्रसङ्ग इत्यर्थः ॥ ३३ ॥

इस अन्योऽन्याध्यासमें यदि दोनों ही मिथ्यातादात्म्यरूपसे अध्यस्त अभिप्रेत होते, तब तो दोनोंको बाध्य होनेके कारण शून्यताकी प्रसक्ति होती। परन्तु ऐसा यहां अभिप्रेत नहीं है, किन्तु यहां प्रत्यगात्मा सत्य है, और स्वस्वरूपसे अध्यस्त होनेके कारण अनात्मवर्ग मिथ्या है, इन दोनोंका परस्पर अध्यास है। इसमें अनात्माके साथ संसृष्टरूपसे प्रत्यक् आत्माका बाध होने पर भी स्वरूपसे प्रत्यगात्माको सत्य होनेके कारण शून्यताका प्रसंग नहीं है ॥ ३३ ॥

नन्वन्योऽन्याध्यासे एव किं प्रमाणमित्या-

शंका—अन्योऽन्याध्यासमें ही क्या प्रमाण है?

शङ्क्याहङ्काराध्यासस्यास्फुटत्वात्प्रसिद्धे एव रजताध्यासे तं प्रथमं साधयति–

समाधान–अहंकाराध्यासको अस्पष्ट होनेके कारण प्रथम प्रसिद्ध रजताध्यासमें ही अन्योऽन्याध्यासको सिद्ध करते हैं–

इदमर्थवस्त्वपि भवेद्रजते परिकल्पितं रजतवस्त्विदमि ।
रजतभ्रमेऽस्य च परिस्फुरणान्न यदि स्फुरेन्न खलु शुक्तिरिव ॥ ३४ ॥

इदमर्थवस्तु रजतमें, तथा रजतवस्तु इदं में अध्यस्त है, क्योंकि रजतभ्रममें इदंका भी भान होता है, यदि इदमंश अध्यस्त न होता तो रजतभ्रममें इदमंशकी शुक्तिकी तरह प्रतीति नहीं होनी चाहिये थी, प्रतीति होती है, इसलिये रजत की तरह इदमंश भी संसृष्टरूपसे अध्यस्त है ॥ ३४ ॥

इदमर्थेति । रजतं तावद् इदमि शुक्त्यादावध्यस्तमिति सम्प्रतिपन्नमेव । इदमंशोऽपि रजतेऽध्यस्त इति साध्ये हेतुमाह–रजतभ्रम इति। भ्रान्तौ भासमानत्वाद्रजतवदित्यर्थः । व्यतिरेके शुक्तिविशेषांशवदित्यर्थः ।

इदमंशसे युक्त शुक्त्यादिमें रजत अध्यस्त है, यह सभीको स्वीकृत है । इदमंश भी रजतमें अध्यस्त है, इस साध्यमें हेतु कहते हैं–'भ्रान्तिमें रजतकी तरह भासमान होनेसे' । यदि रजतमें इदमंश अध्यस्त न होता तो विशेषांशशुक्ति की तरह भ्रान्तिमें प्रतीत भी नहीं होता ।

यद्वा–यदीदन्त्वमनध्यस्तं स्यान्न भ्रमे स्फुरेच्छुक्तिवदिति तर्क उक्तः । रजते पुरोवर्तित्वलक्षणेदन्त्वास्फुरणे तदर्थिप्रवृत्तिरपि न स्यादिति निष्कर्षः ॥ ३४ ॥

अथवा 'यदि इदन्त्व अध्यस्त न होता तो शुक्ति की तरह भ्रममें प्रकाशित नहीं होता' यह तर्क कहा गया है । रजतमें पुरोवर्तित्वरूप इदन्त्वका भान न होने पर पुरोवर्तिमें रजतार्थी मनुष्यकी प्रवृत्ति भी नहीं होगी, यह तात्पर्य है ।

एवमर्थाध्यासेऽनुमानमुक्त्वा ज्ञानाध्यासेऽध्यक्षं प्रमाणयति—

इसप्रकार अर्थाध्यासमें अनुमानप्रमाण कहकर ज्ञानाध्यासमें प्रत्यक्षप्रमाण कहते हैं–

रजतप्रतीतिरिदमि प्रथते ननु यद्वदेवमिदमित्यपि धीः ।
रजते, तथासति कथं न भवे-दितरेतराध्यसननिर्णयधीः ॥ ३५ ॥

जैसे इदमंशमें रजतका भान होता है, तद्वत् रजतमें इदमंशका भान होता है, इसप्रकार इदमंश एवं रजत इन दोनोंको अन्योऽन्यतादात्म्यरूपसे प्रतीत होनेपर अन्योऽन्याध्यासके निर्णयका निश्चय क्यों न होगा ? ॥ ३५ ॥

रजतेति । एकैव 'इदं रजतम्' इति धीः । तत्र यथा रजतस्येदमा तादात्म्यं भासत एवमिदमोऽपि रजततादात्म्यमित्यनुभव एव अत्र इतरेतराध्यासे मानमित्यर्थः ॥ ३५ ॥

'इदं रजतम्' यह ज्ञान एक ही है । इस ज्ञानमें जैसे रजतका इदमंशके साथ तादात्म्यप्रतीत होता है, तद्वत् इदमंशका भी रजतके साथ तादात्म्य प्रतीत होता है, अतः यह परस्परके तादात्म्यका प्रत्यक्ष अनुभव ही इस अन्योऽन्याध्यासमें प्रमाण है ॥ ३५ ॥

उक्तानुमानमूलभूतां व्याप्तिं प्रकटयति—

'इदमंश, रजतमें अध्यस्त है, भ्रान्तिमें भासमान होनेसे, रजतकी तरह, इस पूर्वोक्त अनुमानकी मूलभूत व्याप्तिको प्रकट करते हैं—

अध्यस्तमेव हि परिस्फुरति भ्रमेषु नान्यत्कथंचन परिस्फुरति भ्रमेषु ।
रज्जुत्वशुक्तिशकलत्वमरुक्षितित्व-चन्द्रैकताप्रभृतिकानुपलम्भनेन ॥ ३६ ॥

भ्रमोंमें अध्यस्तका ही भान होता है, जो अध्यस्त नहीं है, उसका किसी भी प्रकारसे भ्रमोंमें भान नहीं होता है, क्योंकि-सर्पभ्रममें रज्जुकी, रजतभ्रममें शुक्तिखण्डकी, मरीचिजल भ्रममें मरुभूमिकी तथा द्विचन्द्रभ्रममें चन्द्रगत एकत्वकी उपलब्धि नहीं होती है,अतःइदं अंश भी अध्यस्तही है ॥३६॥

अध्यस्तमेव हीति । अध्यस्तस्यैव भ्रमे स्फुरणादिदमंशोऽप्यध्यस्त इति साधितमित्यर्थः । ननु 'सर्वं ज्ञानं धर्मिण्यभ्रान्तम्' इति न्यायादनध्यस्तोऽपीदमंशः प्रथतामिति नेत्याह—नान्यदिति । अन्यत्=स्वरूपेण संसृष्टतया वा अनध्यस्तमित्यर्थः। धर्मिण्यभ्रान्तमिति च धर्मिस्वरूपे अभ्रान्तं नतु संसर्गेऽपीत्यर्थः । कथं न स्फुरतीति चेत् ? अनुभवबाधादेवेत्याह—भ्रमेष्विति । सर्परजतमरीचिद्विचन्द्रादिभ्रमेष्वनध्यस्तानां रज्जुत्वादीनां स्फुरणानुपलम्भादित्यर्थः ॥ ३६ ॥

अध्यस्तका ही भ्रममें भान होनेके कारण इदमंश भी अध्यस्त है, यह सिद्ध किया ।

शंका—"धर्मी (विशेष्य) विषयक सभी ज्ञान अभ्रान्त होते हैं, किन्तु प्रकार (विशेषण) में ही विपरीत भान होता है' इस न्यायसे अनध्यस्त इदमंशका भ्रममें भान होओ ?

समाधान—स्वरूपसे तथा संसृष्टरूपसे जो अध्यस्त नहीं है, उसका किसी भी प्रकारसे भ्रममें भान नहीं हो सकता । 'धर्मिण्यभ्रान्तम्' इस न्यायका 'धर्मिस्वरूपमें अभ्रान्त, न कि—धर्मीके सम्बन्धमें अभ्रान्त' यह अर्थ है । अर्थात् इदमंश स्वरूपसे अभ्रान्त होने पर भी संसृष्टरूपसे (अध्यस्त) है ।

शंका—अनध्यस्तका भ्रममें भान क्यों नहीं होता है ?

समाधान—अनुभवका बाध होनेसे, अर्थात् 'अनध्यस्तका कभी भी भ्रममें भान नहीं होता है' ऐसा सभीको अनुभव होता है । सर्प, रजत, मरीचि, द्विचन्द्र, आदिक भ्रमोंमें अनध्यस्त रज्जु आदिकोंका किसी भी प्रकारसे भान नहीं देखा गया है ॥३६॥

ननु—रजतादिभ्रमे द्वैरूप्यावभासादस्तु परस्पराध्यासो, नत्वहमध्यासे, तत्र द्वैरूप्यानवभासादित्याशङ्क्य तद् दृष्टान्तेनात्रापि साधनीय मित्याह—

शंका—रजतादि भ्रममें-'इदं' एवं 'रजत' रूपसे दो प्रकारका भान होनेसे अन्योऽन्याध्यास सिद्ध रहो, परन्तु 'अहम्' अध्यासमें दोरूपका भान न होनेके कारण अन्योऽन्याध्यास सिद्ध न होगा।

समाधान—रजतादि भ्रमके दृष्टान्त द्वारा 'अहम्' अध्यासमें भी दो विरुद्धरूपका भान सिद्ध करना चाहिये—

इतरेतराध्यसनमेव ततश्चितिचैत्ययोरपि भवेदुचितम्।
रजतभ्रमादिषु तथाऽवगमान्न हि कल्पना गुरुतरा घटते ॥३७॥

अध्यासत्वरूप हेतुसे आत्मा और अनात्माका भी अन्योऽन्याध्यास ही योग्य हो सकता है, क्योंकि रजतभ्रमादिओंमें अन्योऽन्याध्यास ही देखा गया है, अन्यथा अहंकाराध्यासको अन्योऽन्याध्यास न माननेपर संसर्गाध्यास तो माननाही पड़ेगा, एवंच अध्यासकी वैरूप्यकल्पनामें गौरव होगा ॥ ३७ ॥

इतरेति। चितिचैत्ययोर्योऽयमहमित्यध्यासः सोऽपि ततः अध्यासत्वादेव हेतोरितरेतराध्यासः स्यात् रजताध्यासवत्, अन्यथाऽध्यासद्वैरूप्यकल्पनाऽनुचिता स्यादित्यर्थः। अत एव 'अहमुपलभे' इत्यहमि चैतन्यानुभवः। व्याप्तिं स्मारयति—रजतेति। प्रकारान्तरेण कल्पनागौरव-माह—न हीति। द्वैरूप्यावभासश्चात्रापि विवेकिनामस्त्येवेति भावः। चित्रादिशब्दवच्चाहंशब्दस्य शबलवाचित्वान्न शब्दद्वयप्रयोगः ॥ ३७ ॥

'चिति चैत्य' यानी आत्मा अनात्माका जो यह 'अहम्' इत्याकारक अध्यास है, वह भी अध्यासत्वरूप हेतुसे रजताध्यासकी तरह अन्योऽन्याध्यासरूप है। अन्यथा 'अहं' अध्यासको अन्योऽन्याध्यासरूप न मानने पर दो प्रकारके अध्यासकी कल्पना अनुचित होगी। अत एव 'अहमुपलभे' 'अयमहम्' इत्यादि व्यवहारमें भी अहंकारमें चैतन्यका अनुभव होता है। हेतुमें साध्यकी अविनाभावसम्बन्धरूप व्याप्तिका स्मरण कराते हैं—रजतेति। अन्यप्रकार माननेसे कल्पनाका गौरव कहते हैं—नहीति। 'अहं' अध्यासमें भी विवेकियोंको आत्म और अनात्म रूपसे द्विविध भान होता ही है। 'चित्रागौ' इत्यादि शब्द प्रयोगकी तरह अहं शब्द भी विशिष्टका वाचक होनेके कारण दो शब्दके प्रयोगकी आवश्यकता नहीं है ॥३७॥

उपपादितमितरेतराध्यासं सोपपत्तिकमुपसंहरति—

युक्तिसे प्रतिपादित अन्योऽन्याध्यासका युक्तिपूर्वक उपसंहार करते हैं—

अनुभूतियुक्त्यनुमितित्रितयादितरेतराध्यसनसिद्धिरतः ।
चितिचैत्यवस्तुयुगलस्य न चेत् त्रितयस्य बाधनमिहापतति ॥ ३८ ॥

अनुभव, युक्ति एवं अनुमान इन तीनोंसे आत्मा और अनात्माका अन्योऽन्याध्यास सिद्ध हुआ है, यदि अन्योऽन्याध्यास न माना जाय तो पूर्वोक्त अनुभव, युक्ति एवं अनुमान इन तीन का बाध हो जायेगा ॥३८॥

अनुभूतीति। अस्मात्पूर्वोक्तानुभवयुक्त्यनुमानरूपात् त्रितयाच्चितिचैत्ययुगलेतरेतराध्याससिद्धिः अन्यथा त्रितयस्यापि बाधापत्तेरित्यर्थः ॥३८॥

इस पूर्वोक्त 'अहमुपलभे' 'एकमेवेदं रजतम्' इत्यादि अनुभव, रजतभ्रमादि दृष्टान्तरूप युक्ति, एवं अध्यासत्वादिहेतुक अनुमानरूप तीनोंसे आत्मा और अनात्माका अन्योऽन्याध्यास सिद्ध हुआ है, अन्यथा इन तीनोंका बाध होगा ॥३८॥

नन्वज्ञातत्वे सादृश्यादिरहितस्य निरंशस्य प्रतीचो विषयिणः कथमध्यासाधिष्ठानत्वम् । लोके सदृशसावयवपराग्विषयाणामेव शुक्त्यादीनामधिष्ठानत्वदर्शनादिति शंकते—

शंका—अज्ञात, सादृयादिरहित, अंशरहित, विषयी, प्रत्यगात्मा अध्यासका अधिष्ठान कैसे हो सकता है ? क्योंकि लोकमें, सदृश, सावयव, एवं बाह्य विषयरूप शुक्त्यादि ही अधिष्ठान देखा गया है—

सदृशसांशपराग्विषयेषु चेद् भवति दोषवशाज्जगति भ्रमः ।
भवतु तत्सकलं वदितुं वयं, तदुपचारवशाद् दृशि शक्नुमः ॥३९॥

यदि संसारमें सदृश, सावयव बाह्य विषयोंमें ही दोषवशसे भ्रम होता है तो रहो, क्योंकि व्यवहारके सामर्थ्यसे ज्ञानस्व-रूपआत्मामें व्यावहारिक सादृश्य, सावयवत्व पराक्त्व आदिको भी हम कह सकते हैं ॥३९॥

सदृशेति। कथंचित्सादृश्यादिसम्पादनेन प्रौढ्या परिहरति—भवत्विति। उपचारो व्यवहारः तत्सामर्थ्याच्चिद्रूपेऽप्यात्मनि तत्सर्वं सुवचमित्यर्थः । तथाहि अन्तःकरणस्य देहेन्द्रियापेक्षया प्रत्यक्त्वं स्वच्छत्वं चास्ति चैतन्यसादृश्यम् । सांशत्वमपि चैतन्यस्याविद्यावशादखण्डस्यापि जीवत्वब्रह्मत्वा-

किसी भी प्रकार सादृश्य आदिके सम्पादन द्वारा प्रौढ़िवृत्ति (असम्मतका भी स्वीकार करके दोष परिहार करना) से दोषका परिहार करते हैं—भवत्विति। उपचार (अमुख्यमें मुख्य व्यवहार) के सामर्थ्यसे ज्ञानरूप आत्मामें भी सादृश्यादि सब कुछ कह सकते हैं। यही स्पष्ट दिखाते हैं—देह, इन्द्रिय, की अपेक्षा अन्तःकरण प्रत्यक् (आन्तर) एवं स्वच्छ है, और चैतन्य भी प्रत्यक् एव स्वच्छ है, यही दोनोंका सादृश्य हुआ । अविद्याके सम्बन्धसे अखण्ड चैतन्यमें भी जीवत्व ब्रह्मत्व आदि-

द्यात्मकमस्ति। पराक्त्वमपि साभासान्तःकरणे तद्-विविक्तत्वेन स्पष्टीभावाद्विषयतामिवापन्नस्य शक्यमुत्प्रेक्षितुम्। अनादित्वाच्च पूर्वपूर्वापेक्षया सर्वमिदमुत्तरोत्तराध्यासे शक्यसमर्थनमिति भावः॥३९॥

रूप सांशत्व है। साभास (चैतन्यके प्रतिबिम्बसे युक्त) अन्तःकरणमें अभिन्नरूपसे प्रकट होनेके कारण विषय-भावापन्नकी तरह भासमान चैतन्यमें पराक्त्व (विषयत्व) की भी उत्प्रेक्षा कर सकते हैं। अध्यासको अनादि होनेके कारण पूर्व-पूर्वकी अपेक्षासे यह सादृश्यादि सब कुछ, उत्तरोत्तरअध्यासमें समर्थन किया जा सकता है, यह भाव है ॥ ३९ ॥

उक्तपरिहारस्यापसिद्धान्तत्वशङ्कामपनयति—

पूर्वोक्त परिहार (समाधान) में अपसिद्धान्तत्व (सिद्धान्तसे विरुद्धपने) की शंकाको दूर करते हैं—

अपि च भाष्यकृदेव तदब्रवीद्, विषयताद्युपचारसमाश्रयात्।
स्ववचसैव न तावदिति ब्रुवन्, सकलमात्मनि विभ्रमसिद्धये ॥ ४० ॥

और आत्मामें अध्यासकी सिद्धिके लिये व्यवहारका आश्रयकरके 'न तावदयमेकान्तेनाविषयः' इत्यादि कहते हुए, भाष्यकार भगवान्‌ने स्वयंही अपनी वाणी द्वारा आत्मामें विषयत्वआदि सर्वका कथन किया है ॥ ४० ॥

अपिचेति। न तावदस्मत्कल्पितोऽयं परिहारः किन्तु भाष्यकृदेवोपचारमाश्रित्य सर्वमिदं विषयत्वादिकमात्मनि विभ्रमसिद्ध्यर्थमब्रवीदित्यर्थः। न च भाष्यकृदुक्तिरनुपलब्धिबाधितेत्याह— स्ववचसेति। कण्ठरवेणैव न त्वभिप्रायगत्येत्यर्थः। भाष्योक्तिमाह—न तावदिति। अध्यासभाष्ये "कथं पुनः प्रत्यगात्मन्यविषयेऽध्यासो विषयतद्धर्माणाम्" इत्याक्षिप्य "न तावदयमेकान्तेनाविषयः अस्मत्प्रत्ययविषयत्वात्" इति ब्रुवन्नित्यर्थः।

यह परिहार (दोषका उद्धार) मैंने केवल अपनी कल्पनासे ही किया है यह बात नहीं है, किन्तु आत्मा में अध्यासकी सिद्धिके लिये व्यवहारका आश्रय कर, यह विषयत्व आदि सब अध्यासकी सामग्री स्वयं भाष्यकार महाराजने भी कही है। 'भाष्यकारका कथन प्रत्यक्ष उपलब्ध न होनेसे बाधित है' यह भी नहीं कहना चाहिये, क्योंकि भाष्यकारने अभिप्राय द्वारा नहीं किन्तु साक्षात् स्वकण्ठरव (शब्द-उच्चारण) से आत्मामें विषयत्वादिका प्रतिपादन किया है। विषयत्वादि प्रतिपादक भाष्यवचनको मूलकार कहते हैं—न तावदिति। अध्यास भाष्यमें "विषय और विषयके धर्मोंका अविषय प्रत्यगात्मामें अध्यास कैसे हो सकता है?" इसप्रकार अध्यासका आक्षेप करके "यह आत्मा सर्वथा अविषय नहीं है, किन्तु 'अहं' वृत्तिका विषय है" इसप्रकार कहते-हुए आचार्यने समाधान कहा है।

अस्मत्प्रत्ययोऽन्तःकरणं तत्राभिव्यक्तः सन् विषय इव भवति, स ह्यविद्यायामाभासाविवेकेन सूक्ष्मप्रतिबिम्बात्मना प्रविष्टोऽस्पष्टोऽपि प्रत्युपाधौ साभासान्तःकरणे स्थूलप्रतिबिम्बात्मना प्रविष्टःसन् शीतभानौ स्वर्भानुवदभिव्यक्तः स्वप्रकाशोऽपि स्पष्टीभावमात्रेणोपचारादस्मत्प्रत्ययविषय इत्युच्यते ॥ ४० ॥

एतच्चाभ्युपेत्योक्तम्, वस्तुतस्त्वपरोक्षाध्यासेऽधिष्ठानापरोक्ष्यं तन्त्रं न तु सादृश्यादीत्याह—

अस्मत्प्रत्यय (अन्तःकरण) में अभिव्यक्त होकर आत्मा विषयकी तरह होता है। वह शुद्ध आत्मा आभासरूप-जीवके साथ तादात्म्यापन्न होकर सूक्ष्म प्रतिबिम्बरूपसे अविद्यामें प्रविष्ट होने पर भी अस्पष्ट यानी स्पष्ट प्रतीत नहीं होता है, किन्तु साभास अन्तःकरणरूप प्रत्येक उपाधिमें स्थूल प्रतिबिम्बरूपसे प्रविष्ट होकर जैसे चन्द्रमाका आश्रय लेकर राहु अभिव्यक्त होता है, तद्वत् स्पष्ट प्रतीत होता है। यद्यपि आत्मा स्वप्रकाश है तो भी साभास अन्तःकरण द्वारा प्रत्यक्ष होनेके कारण उपचारसे अहंप्रत्ययका विषय कहाजाता है।

अर्थात् स्वप्रकाश आत्मामें अस्मत्प्रतीतिविषयताका व्यवहार गौण है, अन्तःकरणमें स्पष्टीभाव यहां गुण है ॥ ४० ॥

यह पूर्वोक्त (सादृश्यादिनिष्ठ अध्यासकारणत्व) सिद्धान्तमें सम्मत न होनेपर भी स्वीकार करके कहा है, वस्तुतः तो अपरोक्ष-अध्यासमें अधिष्ठानका अपरोक्षत्व ही प्रयोजक है, सादृश्यादि प्रयोजक नहीं है, यह कहते हैं—

अपरोक्षरूपविषयभ्रमधीरपरोक्षमास्पदमपेक्ष्य भवेत् ।
मनसः स्वतो नयनतो यदि वा स्वप्नभ्रमादिषु तथा प्रथितेः ॥ ४१ ॥

अपरोक्ष—अधिष्ठानकी अपेक्षा करके ही अपरोक्ष विषयक अपरोक्ष भ्रम बुद्धि होती है। कहीं मनसे कहीं स्वतः एवं कहीं नेत्रसे अधिष्ठानका अपरोक्ष होता है, स्वप्न भ्रम आदि स्थलोंमें ऐसा देखा गया है ॥४१॥

अपरोक्षेति। अपरोक्षरूपाऽपरोक्षविषया च भ्रमधीरपरोक्षाधिष्ठानमात्रमपेक्षते, न त्वारोप्याधिष्ठानयोरेकेन्द्रियग्राह्यत्वसादृश्यादिकमपि व्यभिचारादित्यर्थः। नन्विन्द्रियागोचरस्यात्मनोऽपरो-

अपरोक्षरूप तथा अपरोक्षविषयक भ्रमबुद्धि केवल अपरोक्ष अधिष्ठानकी अपेक्षा करती है, व्यभिचार होनेसे आरोप्य एवं अधिष्ठान की एकेन्द्रियग्राह्यता, व सादृश्य आदि की अपेक्षा नहीं करती है।

शंका—इन्द्रियका अविषय आत्माका अपरोक्ष भी असम्भव है?

समाधान—'यदि वा' का कथन यथायोग्य व्यव-

न्तत्वमपि दुर्घटमित्याशङ्क्याह—मनस इति। यदि क्वेति व्यवस्थार्थम्। क्वचिन्मनसः क्वचित्स्वतः क्वचिच्चक्षुरादित इत्यर्थः। क्वेदमवधारितमित्यत्राह—स्वपनेति ॥ ४१ ॥

नन्वात्मभिन्नस्य स्वतोऽपरोक्षत्वाभावात् तादृशोऽध्यासः क्व संप्रतिपन्न इत्याशङ्क्य "आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि" (ब्र० सू० २।१।२८) इति न्यायसिद्धत्वात्स्वप्नभ्रम इत्याह—

स्थाके लिये है, अर्थात् आत्माका अपरोक्षभान कभी मनसे, कभी स्वतः एवं कभी चक्षुरादिसे भी होता है।

शंका—यह कहां देखा गया है?

समाधान—स्वप्न-भ्रम आदि स्थलोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे आत्माका अपरोक्षभान, देखा गया है ॥४१॥

शंका—आत्मासे भिन्न कुछ भी वस्तु स्वतः अपरोक्ष नहीं है, तब स्वतः अपरोक्ष अधिष्ठानमें अध्यास कहां देखा गया है?

समाधान—'आत्मामें इसप्रकार विचित्र अध्यास देखे गये हैं' इस ब्रह्मसूत्ररूपीन्यायसे सिद्ध होनेके कारण स्वतः अपरोक्ष आत्मामें स्वप्नभ्रम ऐसा देखा गया है, यह कहते हैं।

स्वतोऽपरोक्षा चितिरत्र विभ्रमस्तथापि रूपाकृतिरेव जायते।
मनोनिमित्तं स्वपने मुहुर्मुहु र्विनाऽपि चक्षुर्विषयं स्वमास्पदम् ॥ ४२ ॥

यद्यपि स्वप्नमें स्वतः अपरोक्ष चेतनही है, तथापि चक्षुका विषय, रूपवाला अधिष्ठानके विना भी केवल मनकी रूपादिवासनासे वारवार रूपाकार भ्रम उत्पन्न होता ही है ॥ ४२ ॥

स्वत इति। चितिस्तावद् ग्राहकान्तराभावाद् स्वसत्तायां संशयादिराहित्यात्स्वयंज्योतिष्ट्व श्रुतेश्च स्वतोऽपरोक्षा, रूपादिहीनतया सादृश्यादिशून्या स्वप्नभ्रमाधिष्ठानम्। तथाऽप्यत्र चितौ स्वप्ने निद्रादोषाद्रूपाद्याकार एव भ्रमश्चक्षुर्विषयं

स्वत इति। अन्य ज्ञाताके न होनेसे, और अपनी सत्तामें संशय विपर्यय आदिसे रहित होनेसे, एवं 'स्वयंज्योतिष्ट्व' की प्रतिपादक-श्रुतिसे स्वप्नमें चेतन स्वतः अपरोक्ष है। रूपादिसे रहित होनेके कारण-चिति सादृश्यआदिसे रहित है। और स्वतः अपरोक्ष-चितिही स्वप्नभ्रमका अधिष्ठान है। यद्यपि स्वप्नमें नेत्रका विषय रूपादिक भी नहीं है, रूपवाला अधिष्ठान भी नहीं है, और मनादिक निमित्त भी नहीं है, तथापि निद्रादोषसे रूपादिआकार भ्रम पुनः पुनः होता ही है। अर्थात् अन्यनिमित्तके न होने पर भी निन्द्रा दोषसे स्वतः अपरोक्ष चेतन ही स्वप्नविभ्रमरूपसे प्रतीत होता है। श्रुति भी कहती है कि—'वही आत्मा स्वप्न-प्रपञ्चरूपसे प्रतीत होता है'।

मनोनिमित्तं वा रूपवदधिष्ठानं विनाऽपि पुनः पुनर्जायते, 'स हि स्वप्नो भूत्वा' (बृ० ४-३-६) इति श्रुतेः । यद्वा चक्षुरादिव्यापारोपरमात्कथं रूपाकृतिरित्यत्राह—मनोनिमित्तमिति। मनोगतरूपादिवासनानिमित्तमित्यर्थः। स्वप्ने तैजसजीवभोग्यत्वेन वासनापुञ्जशेषस्य मनसोऽवस्थानात् ।

अत्रेदं विचारणीयम्—किं ब्रह्मचैतन्यं स्वप्नभ्रमाधिष्ठानम्, उत जीवचैतन्यमिति । आद्ये व्यावहारिकः सन्नज्ञातसत्ताकः स्वप्नप्रपञ्चःस्यात्। अन्त्येऽपि किं जागरे तस्य बाधः किं वा लय इति।

अत्र वदन्ति । अवस्थात्रयविशिष्टं ह्यात्मचैतन्यं भवति, स्थूलान्तःकरणोपहितं जागरे, वासनाविशिष्टान्तःकरणोपहितं स्वप्ने, सुषुप्तौ च सूक्ष्मतदुपहितम् इति । तत्र जाग्रदवस्थोपहितं चैतन्यं स्वप्नभ्रमाधिष्ठानम्, जागरादौ च 'अहं चैत्रः' इति तादृगधिष्ठान बोधात्तद्बाधः। एवं च स्वप्नस्य जाग्रत्प्रपञ्चवैलक्षण्यं 'सति प्रमातरि बाध्यत्वं' वक्ष्यमाणमुपपत्स्यते । स्वप्नान्ते सुषुप्तिश्चेत् स्वप्न-

अथवा 'मनोनिमित्त' का प्रकारान्तरसे व्याख्यान करते हैं—

शंका—स्वप्नमें चक्षुरादि-इन्द्रियोंके लीन हो जानेसे रूपाकार भ्रम कैसे होगा ?

समाधान—मनमें रहनेवाली रूपादिवासनाओंको निमित्त बनाकर रूपाकार भ्रम होता है । स्वप्नमें तैजससजीवात्माके भोग्यरूपसे वासनाओंका समुदाय ही जिसमें परिशिष्ट (बाकी) रहा है—ऐसे मनकी स्थिति मानी जाती है । इस मतमें 'सहिस्वप्नोभूत्वा' इस श्रुतिमें 'सधीस्वप्नोभूत्वा' ऐसा पाठ है ।

यहां यह विचारके योग्य है कि—क्या स्वप्नभ्रमका अधिष्ठान ब्रह्मचैतन्य है या जीवचैतन्य है ? । यदि ब्रह्मचैतन्य स्वप्न-भ्रमका अधिष्ठान माना जाय तो, जाग्रत प्रपंचकी तरह स्वप्न प्रपञ्च भी अज्ञातसत्तावाला व्यावहारिक हो जायगा, परन्तु ऐसा मान नहीं सकते, क्योंकि—स्वप्नप्रपञ्च, केवल ज्ञातसत्तावाला प्रातिभासिक है । यदि जीवचैतन्य स्वप्नभ्रमका अधिष्ठान माना जाता है तो क्या जाग्रत्में स्वप्नप्रपञ्चका बाध होता है, या लय होता है ?

यहां कोई आचार्य कहते हैं—एक ही आत्मचैतन्य जाग्रदादि-तीन अवस्थाओंसे संयुक्त होता है । जाग्रत्में स्थूल-अन्तःकरणसे उपहित (उपाधिवाला) स्वप्नमें वासनायुक्तअन्तःकरणसे उपहित, तथा सुषुप्तिमें सूक्ष्म अन्तःकरणसे उपहित होता है । जाग्रदवस्थासे उपहित चैतन्य स्वप्नभ्रमका अधिष्ठान है । जाग्रत्के आदिमें 'अहं चैत्र' इत्यादि आकारक जाग्रदवस्थासे उपहित चैतन्यरूप अधिष्ठानके ज्ञानसे स्वप्नभ्रमका बाध होता है । तथा च 'प्रमाताके होनेपर बाध्यत्व' यह जाग्रत् प्रपञ्चसे स्वप्नका वक्ष्यमाण वैलक्षण्य युक्तिसंगत होगा । जहां स्वप्नके बाद सुषुप्ति होती है वहां तो,

सृष्टेर्लयएव, एतदभिप्रायेण च वक्ष्यति 'क्षीणे तु तत्र लयमेति' (सं० शा० ३।११७) इत्यादीति न पूर्वोत्तरविरोधः।

बुद्ध्याद्युपहितजीवरूपं हि तत्स्रष्ट्वा 'तदेवानु प्राविशत्' इत्यादिश्रुतेरीशकल्पितत्वेन व्यावहारिकत्वाच्छुक्त्यादिवदधिष्ठानत्वयोग्यम्। तन्निष्ठाश्च जीवकल्पिताज्ञानावस्थाः स्वप्नभ्रमोपादानभूताः 'अहं चैत्रः' इत्यादिजाग्रद्बोधेन बाध्यन्ते, शुक्तिज्ञानेनेव रजतोपादानाज्ञानावस्था इति। न चैवं सति 'अहं गजोऽहं नील' इति स्वप्नाकाराप्त्तिरिति वाच्यम्। न हि स्वप्नः सर्वोऽपि तादात्म्याध्यासः किन्तु जाग्रत्संस्कारानुसारात्कचित्तथा। कचित्तुसंसर्गाध्यासः 'अहं राजाऽयं गजो मम क्षेत्रम्' इति तदाकारदर्शनादिति।

तदिदमापातरमणीयम्।

तथाहि। न तावदीशकल्पितस्थूलान्तःकरणोपहितं चैतन्यं स्वप्नकालेऽस्ति यत्तदधिष्ठानं स्यात्। नापि तज्ज्ञानं जागरादिजन्यं स्वप्नभ्रम-

स्वप्नसृष्टिका लय ही होता है। इस अभिप्रायसे 'स्वप्नारम्भक कर्मके क्षीण होने पर सुषुप्तिमें स्वप्नसृष्टिका लय होता है, इत्यादि' ग्रन्थकार आगे कहेंगे, अतएव पूर्व एवं उत्तर ग्रन्थका परस्पर कुछ भी विरोध नहीं है।

'बुद्ध्यादि कार्यकरण संघातको रचकर ईश्वरात्मा-स्वयं ही उसमें प्रविष्ट हुआ' इत्यादि श्रुति-प्रमाणसे बुद्ध्यादिसे उपहित जीवरूप, ईश्वरसे कल्पित होनेके कारण व्यावहारिक है; अतएव शक्ति आदिकी तरह बुद्ध्यादि-उपहित जीवरूप स्वप्नभ्रमके अधिष्ठानत्वकी योग्यता रखता है। इसलिये बुद्ध्यादि-उपहित जीवमें स्थित, जीवकल्पित तूलाअविद्यारूप निद्रा अवस्था जो कि-स्वप्नभ्रमके उपादानकारणरूप है-वह, जैसे रजतका उपादान तूला अज्ञान अवस्था शुक्ति-ज्ञानसे बाधित होती है तैसे 'मैं चैत्र हूँ' इत्यादि जाग्रत्-ज्ञानसे बाधित होती है।

शंका-जीव-चैतन्यमें स्वप्न प्रपञ्चका तादात्म्य अध्यास स्वीकार करने पर 'मैं गज हूँ' 'मैं नील हूँ' ऐसी स्वप्नमें प्रतीति होनी चाहिये।

समाधान-स्वप्नमें 'मैं राजा हूँ' 'यह गज है' 'यह मेरा क्षेत्र है' ऐसी प्रतीति होनेसे सभी स्वप्न प्रपञ्च जीवमें तादात्म्य सम्बन्धसे अध्यस्त नहीं हैं, किन्तु जाग्रत् के संस्कारोंके अनुसार कहीं तादात्म्य अध्यास, एवं कहीं संसर्गाध्यास, माना जाता है।

किसी आचार्यका सो यह पूर्वोक्त मत आपातरमणीय यानी यथार्थ नहीं है, किन्तु दोषग्रस्त है।

पूर्वोक्त मतके दोषको प्रकट करते हैं-ईश्वर कल्पित, स्थूल अन्तःकरणसे उपहित चैतन्य. स्वप्नकालमें नहीं है, जिससे वह स्वप्नभ्रमका अधिष्ठान बने और जाग्रत् आदिसे जन्य, अन्तःकरण उपहित चेतनरूप अधिष्ठानका ज्ञान स्वप्नभ्रमका बाधक भी नहीं हो सकता

बाधकं भवितुमर्हति । तद्धि किं साक्षिज्ञानमविद्यावृत्तिरन्तःकरणवृत्तिर्वा । नाद्यौ, तयोरज्ञानानिवर्तकत्वेनाबाधकत्वात् । नान्त्यः, अन्तःकरणवृत्तेरज्ञातबोधत्वादन्तःकरणस्य चाज्ञातसत्ताऽनभ्युपगमेन प्रमाणावेद्यत्वात् स्वस्मिंश्च स्ववृत्तेरसम्भवादित्यलमसद्ग्रहेण ।

केचित्—अवच्छिन्नानवच्छिन्नसाधारणं चिन्मात्रं स्वप्नाधिष्ठानमाहुः, तच्च साधारणचिन्मात्रस्य 'परस्परविरोधे हि' इत्यादि न्यायेन दुर्निरूपत्वादेव नोपपद्यत इति किं प्रपञ्चेन ?

शरीरावच्छिन्नं चैतन्यं तदधिष्ठानमित्यपरे। तदतिस्थवीयः । न हि जागरादौ शरीरबोधंविना स्वप्नानिवृत्तिः, घटज्ञानादपि तन्निवृत्तेः ।

अन्ये त्वाहुः—अन्तःकरणोपलक्षितं चैतन्यमधिष्ठानमिति । तन्मते शुद्धचित एवाधिष्ठान-

है । क्योंकि—वह अधिष्ठानका ज्ञान क्या साक्षीज्ञान है ? या अविद्यावृत्ति है ? या अन्तःकरण वृत्ति है ? । साक्षीज्ञान एवं अविद्यावृत्ति ये दो नहीं कह सकते हैं, क्योंकि—ये दोनों अज्ञानके निवर्तक न होनेके कारण स्वप्नभ्रमके बाधक नहीं हो सकते हैं । अन्तःकरण-वृत्ति भी नहीं कह सकते हैं, क्योंकि—अन्तःकरणकी वृत्ति अज्ञात पदार्थको बोधन करती है, और अन्तःकरणकी अज्ञात-सत्ताका स्वीकार न होनेके कारण अन्तःकरण प्रमाणसे वेद्य नहीं है, किन्तु साक्षीभास्य है । और स्व (अन्तःकरण) में स्वकी प्रवृत्तिका सम्भव भी नहीं* है, इसप्रकार पूर्वोक्त अयथार्थ मतकी विशेष आलोचना व्यर्थ है ।

कोई आचार्य कहते हैं—उपाधिसे अवच्छिन्न व अनवच्छिन्न साधारण केवल सामान्य चेतन ही स्वप्न-भ्रमका अधिष्ठान है । परन्तु यह कथन युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि—"अवच्छिन्न चेतन एवं अनवच्छिन्न चेतनका परस्पर विरोध होनेके कारण प्रकारान्तरसे स्थिति नहीं हो सकती है" इस न्यायसे सामान्य चेतनके निरूपणका असम्भव है, इसप्रकार इस मतका विस्तार पूर्वक खण्डन सारशून्य है ।

और कोई कहते हैं—शरीरावच्छिन्न चैतन्य स्वप्न-भ्रमका अधिष्ठान है । यह मत अतीवस्थूल है, क्योंकि जाग्रत् आदिमें शरीर ज्ञानके विना स्वप्नभ्रमकी अनिवृत्ति नहीं होती है, किन्तु जाग्रत् कालके घटज्ञानसे भी स्वप्नभ्रमकी निवृत्ति होती है ।

और कोई आचार्य कहते हैं—अन्तःकरणसे उपलक्षित चैतन्य स्वप्नभ्रमका अधिष्ठान है । इसमतमें शुद्ध चैतन्यको ही अधिष्ठान होनेसे जाग्रत्में स्वप्नका बाध न होना चाहिये, क्योंकि—अधिष्ठानका ज्ञान नहीं है।

* अन्तःकरण एवं उसके सुखादि धर्म साक्षीभास्य हैं जैसे नेत्रकी वृत्ति नेत्र व नेत्रगतकज्जलादिको विषय नहीं कर सकती है, तैसे अन्तःकरणकी वृत्ति भी स्वभिन्नको ही विषय करती है ।

त्वाज्जागरे स्वप्नस्य न बाधः स्यात्। तथा च सति प्रमातरि बाध्यत्वं नोपपद्यते।

तस्मादनुपहितचैतन्यं जाग्रत्प्रपञ्चाधिष्ठानम्। तदुपहितं तु स्वप्नप्रपञ्चाधिष्ठानमिति वृद्धाः।

एवं च जागरादावावश्यकजाग्रद्वस्तूपहितचिद्गोचरप्रमाणवृत्त्या सति प्रमातरि स्वप्नबाध उपपद्यते। तत्र चाधिष्ठानतावच्छेदकं घटाद्येव, जाग्रदुपहितत्वमुपलक्षणं, सर्वनामशक्तौ बुद्धिस्थत्ववत्। तथा च जाग्रदनुभूतवस्तूपहितमेव ब्रह्मचैतन्यमिन्द्रियोपरमात्तथात्वेनाप्रथमानमुपाधेस्तटस्थत्वात्स्वरूपमात्रेण प्रथमानं निद्रादोषजाग्रत्संस्कारादृष्टसहकृताज्ञानेन सूक्ष्मप्रपञ्चात्मना विवर्त्तमानं स्वेनैव भासते 'अस्य लोकस्य सर्वावतो मात्रामुपादाय' इति श्रुतेः।

अत्र तिरोहितजाग्रदुपाधिविशेषस्य चैतन्यमात्रस्य स्वतोऽपरोक्षस्फुरणमेवाधिष्ठानसामान्यज्ञानम्। अज्ञातोपाधेश्चोपहितानवभासादधिष्ठानतावच्छेदकजाग्रद्धटाद्याकारधिया बाधः। मूलाज्ञानाकार्यत्वादविद्यातिरिक्तदोषजन्यत्वाच्च स्वप्नस्य न व्यावहारिकतेति दिक्॥ ४२॥

और ऐसा माननेसे 'सति प्रमातरि बाध्यत्वं' यह जो स्वप्नभ्रमका लक्षण है--वह भी युक्तियुक्त न होगा।

इसलिये अनुपहित चैतन्य जाग्रत्प्रपञ्चका अधिष्ठान है, और जाग्रत्प्रपञ्चसे उपहित चैतन्य स्वप्नप्रपञ्चका अधिष्ठान है, यह वृद्ध यथार्थदर्शी आचार्योंका सिद्धान्त है। तथा च जाग्रत्के आदिमें, आवश्यक जो घटादि जाग्रत् कालकी वस्तुसे उपहित चैतन्य विषयक प्रमाणवृत्ति उससे प्रमाताके रहनेपर स्वप्नप्रपञ्चका बाध उपपन्न होता है स्वप्नमें अधिष्ठानतक अवच्छेदक(विशेषण)घटादि हैं। जैसे'तमानय' इत्यादिस्थलमें तदादिसर्वनामकी शक्तिमें 'बुद्धिस्थत्व' उपलक्षण है, तैसे 'जाग्रदुपहितत्व' यहाँ उपलक्षण है। इसप्रकार जाग्रत्में अनुभूत घटादिवस्तुसे उपहित ब्रह्मचैतन्य जो स्वप्नभ्रमका अधिष्ठान है सो उपहितरूपसे भासता नहीं है। क्योंकि- स्वप्नमें इन्द्रियाँ उपरत हैं और घटादि उपाधिके तटस्थ (विलग) होनेसे स्वरूपमात्रसे ब्रह्म चैतन्यका भान होता है, अतएव वही चैतन्य, निद्रादोष, जाग्रत्के संस्कार एवं अदृष्टसे सहकृत अज्ञान द्वारा सूक्ष्मप्रपञ्च स्वप्नरूपसे विवर्त्तित हुआ स्वस्वरूपसे ही प्रकाशित होता है। श्रुति भी कहती है—'स्पष्ट पदार्थोंके अनुभवसे युक्त, सर्व जाग्रत् लोकके संस्कारोंको ग्रहण कर यह जीव स्वप्नावस्थाको प्राप्त होता है।'

स्वप्नमें जिसकी जाग्रत् प्रपञ्चरूप उपाधि-विशेष विलीन है, ऐसा जो चैतन्यरूप आत्मा, उसका स्वतः अपरोक्ष भान ही अधिष्ठानका सामान्य ज्ञान है। जिस पुरुषको उपाधिका ज्ञान नहीं है, उसको उपहित आत्माका भान नहीं होता है, इसलिये अधिष्ठानताके अवच्छेदक जाग्रत् कालके घटादिविषयकवृत्तिसे स्वप्न विभ्रमका बाध होता है। मूलाज्ञानका कार्य न होनेसे तथा अविद्यासे अतिरिक्त निद्रादिदोषसे जन्य होनेके कारण स्वप्न-प्रपञ्च व्यवहारिक सत्तावाला नहीं है, यह संक्षेप है॥ ४२॥

आरोप्याधिष्ठानयोरेकेन्द्रियग्राह्यत्वस्य व्यभिचारं वक्तुं मनः प्रमाणत्वाभ्युपेत्यवादेन मानसे नभसि चाक्षुषाध्यासं दर्शयति—

'आरोप्य और अधिष्ठान एक ही इन्द्रियसे ग्राह्य हैं' इस नियमके व्यभिचारको कहनेके लिये मन को प्रमाण स्वीकार करके मनसे प्रतीत नभमें चक्षुजन्य-ज्ञानका अध्यास दिखाते हैं—

मनोऽवगम्येऽप्यपरोक्षताबलात् तथाऽम्बरे रूपमुपोल्लिखन् भ्रमः ।
सितादिभेदैर्बहुधा समीक्ष्यते, यथाऽक्षिगम्ये रजतादिविभ्रमः ॥ ४३ ॥

जैसे चक्षुसे प्रत्यक्ष होनेवाले शुक्तिकाआदिमें रजत आदिका भ्रम होता है, तैसे मनसे प्रत्यक्ष होनेवाले आकाशमें अपरोक्षताके बलसे शुक्ल नील आदि विशेष रूपका अवभास करता हुआ अनेक प्रकारका भ्रम देखा जाता है ॥ ४३ ॥

मनोऽवगम्येऽपीति । मानसापरोक्षेऽप्यम्बरेऽधिष्ठानेऽपरोक्षतामात्रसामर्थ्यात् 'शुक्लं नभो' 'नीलं नभः' इति नानारूपोल्लेखी भ्रमो दृश्यतेऽतो नोक्तनियम इत्यर्थः, एवं स्वतोऽपरोक्षे मनोऽपरोक्षे च स्वप्नभ्रमनभोनैल्यभ्रमानुदाहृत्य, नयनत इत्यस्योदाहरणमाह—यथाऽक्षिगम्ये इति । व्याख्यातम् ।

मनसे जिसका अपरोक्षज्ञान होता है, ऐसे आकाशरूप अधिष्ठानमें एकमात्र अपरोक्षताके बलसे 'शुक्ल नभ' 'नील नभ' इसप्रकार विविध रूपोंका भासक चाक्षुषभ्रम देखा जाता है । इसलिये 'अधिष्ठान और आरोप्य एक इन्द्रियसे ग्राह्य है' यह नियम सर्वत्र नहीं माना जाता है। इसप्रकार स्वतः अपरोक्ष आत्मामें स्वप्नभ्रमका तथा मानस अपरोक्ष आकाशमें नीलत्वआदिके भ्रमोंका उदाहरण देकर चक्षुसे प्रत्यक्ष होनेवाले शुक्तिका आदि अधिष्ठानमें रजत आदि विभ्रमका उदाहरण कहते हैं—**यथाऽक्षिगम्ये** । इस दृष्टान्तका व्याख्यान हो गया है ।

ननु—नाकाशो मानसो बाह्यत्वान्मनसो बहिरस्वातन्त्र्यात्, अपि तु साक्षिवेद्य एवेति चेन्न । बाह्यस्य प्रमाणेनैव ज्ञाततया साक्षिवेद्यत्वात्, नभसश्च बहिरिन्द्रियागोचरस्य मानसत्वमन्तरेणाज्ञाततयैव भानप्रसङ्गात् । तदुक्तम्—'ज्ञाततया विषयः प्रमाणव्यवधानमपेक्षते' इति ।

शंका—आकाश मनसे अपरोक्ष नहीं हो सकता, क्योंकि—आकाश बाह्य है, और मन स्वतन्त्रतासे बाह्यपदार्थमें नहीं जा सकता है। इसलिये आकाशको केवल साक्षिवेद्य ही मानना चाहिये ।

समाधान—यह शंका ठीक नहीं है । बाह्यघटादि पदार्थ, प्रमाणसे ज्ञात होकर ही परम्परासे साक्षिवेद्य हैं, साक्षात् साक्षिवेद्य नहीं होसकते। आकाश चक्षुरादि बाह्य इन्द्रियोंका विषय नहीं है, इसलिये आकाशका मानस-प्रत्यक्ष माने विना अज्ञातत्वेन ही भानका प्रसङ्ग होगा, परन्तु आकाशका ज्ञातत्वेन भी भान होता है, अतः आकाशकी ज्ञातता मनसे ही माननी चाहिये । आचार्योंने कहा है—जो पदार्थ ज्ञातता द्वारा साक्षीके विषय हैं, उनमें प्रमाणके व्यवधानकी अपेक्षा रहती है ।

कथं तर्हि सुखादेः कल्पितरजतादेश्च ज्ञातत्वेनानुभव इति चेत् तेषामान्तरत्वेनानावृत्तत्वात्। बाह्यस्य तु नभसो घटादिवदावृत्तत्वेनावरणभङ्गाय, प्रमाणापेक्षणान्मनोवेद्यत्वमगत्याऽभ्युपेयम्। न च तस्य वहिरस्वातन्त्र्यम्, 'मनसाह्येष पश्यति' इत्यादिश्रुत्या बाह्यानामपि मनोवेद्यायाशितत्वात्। वहिरस्वातन्त्र्योक्तिश्च केवलमनोविषया। न चानर्पिताकारं मनः साक्षात्कारसमर्थमिति चक्षुरेव तत्राकारार्पकमुपेयम्।

ननु-कथं नीरूपे नभसि चक्षुषः प्रवृत्तिः, तस्य रूपपुरस्कारेणैव द्रव्येषु प्रवृत्तेरिति चेत् सत्यमेतत्, न स्वीयरूपपुरस्कारेणेत्यत्र किञ्चि-

शंका—तब सुखादिका तथा कल्पित रजतादिका ज्ञातत्वेन किसप्रकार अनुभव होगा ? क्योंकि—सुखादि केवल साक्षीवेद्य हैं, प्रमाण प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं है।

समाधान—सुखादि एव कल्पितरजतादि, आन्तर होनेके कारण अनावृत्त हैं। घटादिकी तरह बाह्य होनेसे आकाश आवृत्त है, अतः आवरण भंगके लिये प्रमाण की अपेक्षा होती है। इसलिये अन्य चक्षुरादि प्रमाणों की प्रवृत्ति न होनेकेकारण आकाश को मनसे वेद्य (मानस प्रत्यक्ष) मानना चाहिये।

शंका—चक्षुरादिकोंके अवलम्बनके विना मन बाह्य पदार्थोंमें स्वतन्त्रतासे नहीं जा सकता है।

समाधान—'यह जीव मनसे ही देखता है' इत्यादि श्रुतिने बाह्यपदार्थ भी मनोवेद्य बतलाये हैं। 'मन बाह्यपदार्थोंमें स्वतन्त्रतासे नहीं जा सकता है' यह कथन तो केवल मनपरक है, अर्थात् साक्षीकी सहायतासे रहित केवल मन बाहर नहीं जा सकता है।

शंका—रूपादि आकारोंके ग्रहण किये विना केवल मन निराकार आकाशके प्रत्यक्ष करनेमें समर्थ नहीं होगा ?

समाधान—चक्षुको ही मनमें आकाशके आकारका समर्पक मानना चाहिये।

शंका—रूपरहित—आकाशमें चक्षुकी प्रवृत्ति कैसे होगी, क्योंकि—चक्षु रूपके द्वारा ही द्रव्योंमें प्रवृत्त होता है।

समाधान—आपका कहना ठीक है, परन्तु अपने रूपके द्वारा ही अपनेमें चक्षु प्रवृत्त होता है, 'अन्यद्रव्यके रूपद्वारा अन्यद्रव्यमें चक्षु प्रवृत्त नहीं होता है' ऐसा नियम माननेमें कुछ प्रमाण नहीं है, क्योंकि—'शङ्ख पीला है' स्फटिक लाल है' इत्यादि स्थलोंमें अन्यरूपके द्वारा भी अन्य द्रव्यके प्रत्यक्ष करनमें चक्षुकी प्रवृत्ति देखी गयी है। पीला, तथा लालरूप, शङ्ख एवं स्फटिक का नहीं है, किन्तु तत्संपृक्त अन्य द्रव्यका है।

नियामकमस्ति 'पीतः शङ्खो' 'रक्तः स्फटिकः' इत्यन्यरूपद्वाराऽपि चक्षुःप्रवृत्तिदर्शनात्। न च तत्र रूपवृत्तेः शौक्ल्यस्यैवाभिभवो न रूपस्येति वाच्यम्। तथा सति उद्भूताभिभूतरूपस्पर्शस्य सुवर्णस्याचाक्षुषत्वप्रसङ्गात्। ततश्चालोकादिरूपोपहिते नभसि तद्द्वारापि चक्षुःप्रवृत्त्यविरोधः।

'अप्रत्यक्षेऽपि ह्याकाशे' इति भाष्यं तु रूपानुपधानकालाभिप्रायं, परमतेन वा। न चान्यरूप-

शंका—'पीतः शङ्खः' इत्यादि स्थलोंमें रूपके शुक्लत्व धर्मका ही दोषसे अभिभव होता है, रूपका अभिभव नहीं होता है?

समाधान—'पीतःशंख' इत्यादिस्थलमें शुक्लरूपमें रहनेवाले धर्मका ही अभिभव होता है रूपका अभिभव नहीं होता है, ऐसा माननेवाले वादीके मतमें "अपने रूपसे ही अपना प्रत्यक्ष होता है अन्य द्रव्यके रूपसे अन्य द्रव्यका प्रत्यक्ष नहीं होता है" यह नियम मानना होगा, ऐसा माननेपर सुवर्णका चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होगा, क्योंकि—सुवर्ण तैजस (तेजका कार्य) है, अतः उसका रूप उद्भूत भास्वरशुक्ल है, एवं उष्णस्पर्श है, सुवर्णके साथ पार्थिवद्रव्यका सम्बन्ध है, इसीलिये सुवर्णमें गुरुत्वादिका भान होता है। पार्थिव रूप व स्पर्शसे सुवर्णके रूप व स्पर्शका अभिभव हो गया है अतः पार्थिवरूपसे ही सुवर्णका चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है। यदि पार्थिव द्रव्यके पीतरूपसे सुवर्णके भास्वर शुक्ल रूपका एवं पार्थिव-स्पर्शसे उष्ण-स्पर्शका अभिभव न माना जाय तो, भास्वर शुक्लका चक्षुसे तथा उष्णस्पर्शका त्वक्से प्रत्यक्ष होना चाहिये, परन्तु प्रत्यक्ष नहीं होता है; अतः अगत्या पार्थिवद्रव्यके पीतरूपसे सुवर्णके रूपका तथा पार्थिवस्पर्शसे उष्णस्पर्शका अभिभव मानना चाहिये। ऐसा मानने पर जैसे सुवर्णका परकीयरूप द्वारा चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है, इसप्रकार आलोक (सूर्य-प्रकाश) आदिके रूपसे युक्त आकाशमें परकीयरूपके द्वारा चक्षु-प्रवृत्तिका कोई भी विरोध नहीं है।

शंका—आकाशका प्रत्यक्ष मानने पर 'अप्रत्यक्ष आकाशमें भी अविवेकी लोग तलमलिनत्वादिका अध्यास करते हैं' इस आचार्यके भाष्यका विरोध होगा।

समाधान—इस भाष्यका 'जिससमय आकाशमें आलोकादिके रूपका आरोप न होगा, उस समय आकाश

द्वाराऽपि रूपवत्येव चक्षुःप्रवृत्तिः, गौरवात्, उद्भूतरूपं गृह्णदेव चक्षुः प्रवर्तते, न तूद्भूतरूपवत्येवेति। अस्तु तर्हि चाक्षुषमेव नभ इति चेन्न अरूपिद्रव्यत्वान्महत्त्वे सत्युद्भूतरूपवत्त्वस्य द्रव्यचाक्षुषत्वे तन्त्रत्वात्। ततश्चात्र रूपद्वारकचक्षुरर्पिताकाशाकारमनोवृत्तिविषयत्वे नीलत्वाद्यारोप इति भावः। एवं तमोऽपि मानसमालोकं विना रूपिग्रहे चक्षुषोऽसामर्थ्यादिति संक्षेपः ॥४३॥

तथापि ज्ञातसामान्यांशमज्ञातविशेषांशमधिष्ठानम्। न चात्मनो निरंशस्य तत्संभव इत्याशङ्क्याऽभेदेऽपि ज्ञाताज्ञातत्वसम्भवमुपपादयति—

अप्रत्यक्ष है' यह अभिप्राय है। अथवा नैयायिक आदिके मतसे आचार्यने आकाशको अप्रत्यक्ष कहा है।

शंका—अन्यद्रव्यके रूपद्वारा भी रूपवाले द्रव्यमें ही चक्षुकी प्रवृत्ति होती है, अर्थात् परकीयरूपके द्वारा भी निरूपद्रव्यमें किसी प्रकार भी चक्षु प्रवृत्त नहीं होता है।

समाधान—ऐसा मानने पर गौरव-दोष होगा, अतः 'उद्भूतरूपको ग्रहण करके ही चक्षु प्रवृत्त, होता है' यह नियम है। 'उद्भूतरूपवाले द्रव्यमें ही प्रवृत्त होता है' यह नियम नहीं है।

शंका—अच्छा तब तो आकाशका चाक्षुष ही प्रत्यक्ष मानना चाहिये ?

समाधान—आकाशको अरूपि (रूपरहित) द्रव्य होनेसे चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं मान सकते हैं, क्योंकि—'महत्परिमाणवाला एवं उद्भूतरूपवाला ही द्रव्य चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है' यह नियम है, प्रकृतमें आकाश महत्परिमाणवाला तो है, परन्तु उद्भूत-रूपवाला नहीं है। इसलिये रूपद्वारा चक्षुसे समुत्पन्न आकाशाकार मनकी वृत्तिका विषय होनेसे आकाशमें नीलत्वादिओंका आरोप होता है, यह भाव है। इसप्रकार तम (अन्धकार) भी मानस-प्रत्यक्ष है, क्योंकि—प्रकाशके विना रूपवाले द्रव्यके ग्रहणमें चक्षुका सामर्थ्य नहीं है, और तम रूपवाला द्रव्य है, यह संक्षेप है ॥ ४३ ॥

यद्यपि यथाकथंचित् आत्मामें प्रपञ्चका अध्यास रहो, तथापि जिसका सामान्य अंश ज्ञात, एवं विशेष-अंश अज्ञात है, वह अधिष्ठान हो सकता है। परन्तु प्रकृत अंशरहित आत्मामें अधिष्ठानत्वका सम्भव नहीं हो सकता है ? ऐसी शंका करके एक अभिन्न वस्तुमें भी ज्ञातत्व एवं अज्ञातत्वके सम्भवका युक्तिसे प्रतिपादन करते हैं —

ज्ञातेपि तावति ततोनतिरिक्तरूपेप्यज्ञानतःस्फुरणमस्फुरणं च दृष्टम्।
दूरस्थयोर्ननु वनस्पतिवस्तुनोस्तद्, भेदो न दृष्टिविषयोवगते च ते नः ॥ ४४ ॥

सामान्यरूपसे ज्ञात, तन्मात्र, वस्तु, जो विशेषरूपसे अतिरिक्त नहीं है, उसकी अज्ञानसे प्रतीति एवं अप्रतीति देखी गई है—जैसे दूर-स्थित दो वृक्ष तो हमको दीखते हैं, परन्तु उनका भेद-जो उनसे अभिन्न है, वह नहीं दीखता है ॥ ४४ ॥

ज्ञातेऽपीति । तावति = तन्मात्रे तदभिन्न इत्यर्थः । ईदृशे वस्तुनि ज्ञातेऽप्यज्ञानवशात्तस्यैव स्फुरणमस्फुरणं च दृष्टमित्यर्थः । कुत्र दृष्टमित्यत्राह—दूरस्थयोरिति । दूरस्थे वनस्पतिद्वये 'एकोऽयं वनस्पतिः'—इति भ्रमो भवति । तत्र चानवस्थाभयादन्योऽन्याभावप्रतियोगिप्रमाणयोरनिरूपणाच्च भेदस्य वनस्पति रूपानतिरेकात्तत्स्फुरणेऽपि भेदास्फुरणं दृष्टमित्यर्थः । ते-वनस्पतिवस्तुनी नोऽस्माकमवगते तयोर्भेदस्तु तदभिन्नोऽपि न दृष्टिविषय इत्यर्थः ।

ज्ञातेऽपाति । तावति का अर्थ है—तन्मात्रमें, 'ज्ञातरूपसे अभिन्नमें' यह 'ततोऽनतिरिक्तरूपे' पदका अर्थ है । ऐसी ज्ञातवस्तुमें भी अज्ञानके वशसे, उसीका ही भान एवं अभान देखा गया है । कहां देखा गया है ? इसको दिखाते है—दूरस्थयोरिति । दूरस्थित, दो वृक्षोंमें 'यह एक वृक्ष है' ऐसा भ्रम होता है । इस भ्रममें अनवस्थादोषके भयसे, तथा अन्योऽन्याभावके प्रतियोगीका एवं प्रमाणका निरूपण न हो सकनेसे, इन दो वृक्षोंका भेद इन दो वृक्षोंसे अतिरिक्त नहीं है; परन्तु वृक्षोंका भान होनेपर भी उनके भेदका भान नहीं देखा गया है । वे वृक्ष-वस्तु, हमको दीखते हैं, परन्तु उनका भेद—जो उनसे अभिन्न है, वह नहीं देखा गया है ।

ननु—तत्रापि वनस्पतित्वेन स्फुरणं भेदत्वेनास्फुरणं तच्च भिन्नमेवेत्याशङ्क्याह—ततइति । शब्दान्तराभिलप्यत्वेन भेदेऽपि स्वरूपेणाभिन्नमेव भेदरूपम् वनस्पति-रूपादित्यर्थः । इतश्च ज्ञातस्याज्ञातत्वं न विरुद्धं 'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' इत्यर्थे भासमान एव तदज्ञानानुभवात्, ज्ञानवदज्ञानस्यापि विषयनिरूप्यत्वात्, सविषयके च विषयस्यैव विशेषणत्वात् , ज्ञातस्य च विशेषणत्वात् ।

शंका—उक्त भ्रममें भी वृक्षत्वरूपसे भान है, और भेदत्वरूपसे अभान है, और वह वृक्षत्व और भेदत्व परस्पर भिन्न हैं ।

समाधान—वृक्षत्व आदि, अन्य शब्दोंसे प्रतिपाद्य होनेके कारण वृक्ष एवं भेदका परस्पर भेद होनेपर भी वृक्षके रूपसे भेदका रूप स्वरूपसे भिन्न नहीं है ।

इस अग्रिम अनुभवसे भी ज्ञात वस्तुमें अज्ञातपना विरुद्ध नहीं है—'आपसे कहा हुआ अर्थ मैं जानता नहीं हूँ' इस स्थलमें भासमान—अर्थमें ही अज्ञानका अनुभव देखागया है। जैसे ज्ञान, विषय निरूप्य (सविषयक) है, तैसे अज्ञान भी विषय निरूप्य है। सविषयक (अज्ञान) में विषय विशेषण होता है, और ज्ञात ही विशेषण होता है ।

न च तत्र ज्ञातसामान्यांश एवाज्ञाननिरूपकः, तस्य प्रमाणावगतस्याज्ञानाविषयत्वात्। परबुद्धिस्थविशेषस्याशक्यज्ञानत्वात्, कथं विशेषणत्वमिति चेन्न। अज्ञाततया साक्षिवेद्यत्वाविरोधात्। आवृत्तचितेरज्ञानाविरोधस्यानुभवसिद्धत्वाच्च। परैरप्यनभ्यासदशायां ज्ञातेऽपि जलादौ संशयाभ्युपगमादिति दिक्॥ ४४॥

शंका—सविषयक अज्ञानमें, ज्ञातसामान्यांश ही अज्ञानका निरूपक है?

समाधान—ऐसा नहीं ह, क्योंकि—सामान्यांश प्रमाणसे विज्ञात है, अतएव वह अज्ञानका निरूपक (विषय) नहीं हो सकता।

शंका—अन्य की बुद्धिमें रहे हुए अर्थविशेषका ज्ञान अशक्य होनेके कारण वह अर्थविशेष, 'न जानामि' पदसे प्रतिपाद्य अज्ञानका विशेषण कैसे होगा? क्योंकि—विशेषण ज्ञात ही होता ह।

समाधान—वह अर्थ विशेष, अज्ञातरूपसे साक्षिज्ञानका विषय है, इसलिये विरोध नहीं ह। 'आवृत्त सामान्य चतन, अज्ञानका विरोधी नहीं है' यह अनुभव सिद्ध है। नैयायिक आदि अन्य वादियोंनेभी अनभ्यासदशामें ज्ञात जलादिमें संशय स्वीकार किया है। संशयमें भी सामान्य—विशेष्य अंशका भान होने पर भी विशेषण-अंशका भान नहीं होता है, यह इस विषयका दिग्दर्शन है॥४४॥

ननु-शुक्त्यादौ ज्ञाताज्ञातांशयोः 'इयं शुक्तिः' इति शब्दद्वयवाच्यत्वेन भेददर्शनान्नैकस्य ज्ञाताज्ञातत्वमित्याशङ्क्य तत्र सन्नप्यंशभेदस्त्वप्रयोजक इत्याह—

शंका—शुक्ति आदि स्थलमें 'इयं' 'शुक्ति' इन दो शब्दोंका वाच्य होनेसे ज्ञात-अंश, एवं अज्ञात-अश इन दोनोंका भेद देखा गया है, अतः एकम ही ज्ञातत्व, एवं अज्ञातत्व नहीं हो सकता है?

समाधान—'इयं शुक्तिः' आदिस्थलमें विद्यमान भी अंश भेद, अज्ञातताका प्रयोजक नहीं है, मूलकार स्वयं यह कहते हैं—

यत्रापि दैवगतितोऽस्त्यतिरिक्तभावो, रूपात्प्रतीतिविषयादितरत्र रूपे।
तत्राप्यबोधघटनां प्रति नाङ्गभावस्तस्यातिरिक्तवपुषोऽपुनरुक्तरूपात्॥४५॥

जहां प्रतीत इदमंशसे अप्रतीत-विशेष-अंशका, दैवगतिसे अर्थात् काकतालीयन्यायसे भेद

विद्यमान है, वहां भी अपुनरुक्त इदमंशसे अन्य रूप शुक्तिका भेद, अज्ञातत्व सम्पादनके प्रति प्रयोजक नहीं है* ॥४५॥

यत्रापीति। यत्रापि शुक्त्यादौ प्रतीतादिदंरूपादितरत्राप्रतीते विशेषांशे दैवाद् भेदो विद्यते, तत्रापि तस्य भेदस्यापुनरुक्तशब्दवाच्यादिदंरूपादतिरिक्तवपुषः शुक्त्यादेरज्ञाततां प्रति नाङ्गत्वमित्यर्थः ॥ ४५ ॥

जहां शुक्त्यादिस्थलमें प्रतीत इदंरूपसे अप्रतीत अन्य शुक्तित्वादिविशेष-अंशमें दैववश भेद रहता है, वहाँ भी अपुनरुक्त शब्दसे प्रतिपाद्य इदंरूपसे अतिरिक्त स्वरूपवाले शुक्त्यादिका भेद, अज्ञातत्वके प्रति प्रयोजक नहीं है ॥ ४५ ॥

इदन्त्वशुक्तित्वधर्मभेद एव ज्ञाताज्ञातत्वावच्छेदक इति चेन्नेत्याह—

शंका— इदन्त्व एवं शुक्तित्वरूप धर्मविशेष ही ज्ञातत्व एवं अज्ञातत्वका अवच्छेदक है।

समाधान—यह भी ठीक नहीं है, यह उत्तर श्लोकसे कहते हैं—

शुक्तीदमंशात् पृथगप्रतीता त्रिकोणता स्यान्ननु वस्तुवृत्त्या।
तथापि तत्स्थं न पृथक्त्वमिष्टं, तदप्रबुद्धत्वनिमित्तभूतम् ॥ ४६ ॥

शंका—शुक्तिके इदमंशसे, अप्रतीत-शुक्ति की त्रिकोणरूपता वस्तुतः पृथक् होगी? समाधान—यद्यपि शुक्तिके इदमंशसे त्रिकोणता प्रथक् है तथापि उसकी पृथक्ता शुक्तिके अज्ञात-पनेमें निमित्त नहीं मानी जा सकती ॥ ४६ ॥

शुक्तीदमंशादिति। अप्रतीता त्रिकोणता = शुक्तित्वं, यद्यपि प्रतीताच्छुक्तीदन्त्वाद्वस्तुतः पृथक्, तथापि तत्स्थं पृथक्त्वं तस्याः शुक्तितायाः अप्रतिबुद्धत्वे निमित्तं नेष्टमिति सम्बन्धः ॥४६॥

यद्यपि प्रतीत, शुक्तिके इदन्त्वसे, अप्रतीत त्रिकोणतारूप शुक्तित्व वस्तुतः पृथक् है। तथापि उसका पृथक्पना, शुक्तित्वके अज्ञातपनेमें निमित्त नहीं माना जा सकता, यह अन्वय है ॥ ४६ ॥

कथं नेष्टमिमि चेदुक्तव्यभिचारादेवेत्याह—

शंका—क्यों नहीं माना जा सकता?

समाधान—'प्रथम कहा हुआ व्यभिचार-दोष होनेसे, यह कहते हैं—

*यद्यपि इदमाकाररूपसे भासमान-पुरोवर्ति वस्तुका, शुक्तित्वादिरूपसे भेद विद्यमान है। तथापि वह शुक्तित्वादि, भासमान इदन्त्व आकारसे पृथक् पदार्थ नहीं हो सकता। यदि वह पृथक् पदार्थ हो तो उत्तरकालमें प्रथम भासमान इदंरूपसे 'इयं शुक्तिः' ऐसा शुक्तिका अभेद ग्रहण नहीं होना चाहिये। इसलिये प्रथम जो पदार्थ, रजतरूपसे भासमान था, वही वस्तुतः शुक्ति था, परन्तु दोषवशात् वह शुक्तित्वरूपसे भासमान नहीं था, अतः 'भासमान ही अभासमान था' ऐसा मानना चाहिये। और 'इदंरूपसे भासमान अन्य था, और शुक्तित्वधर्मवाला अभासमान अन्य था' ऐसा माननेमें कुछ प्रमाण नहीं है,। और अत्यन्तभेद मानने पर गौ-अश्वकी तरह सामान्यविशेष भाव भी नहीं हो सकता है, अतः एकमें ही ज्ञातत्व एवं अज्ञातत्व मानना चाहिये।

यतः प्रपश्यन्नपि भेदिनः स्वं वनस्पते रूपमभिन्नमस्मात् ।
न भेदमस्य प्रतिपद्यतेऽक्ष्णा वनस्पतेः पार्श्वगतात्परस्मात् ॥ ४७ ॥

क्योंकि दूरस्थ एक वृक्षसे अन्य वृक्षका भेदयुक्त असाधारणरूप अभिन्नरूपसे देखता हुआ भी पुरुष, पासके अन्यवृक्षसे इस वृक्षका भेद नेत्रसे नहीं देखता है। अतः 'जो जिसके ज्ञात होने पर अज्ञात होवे वह उससे पृथक् होवे' यह नियम नहीं मानसकते ॥ ४७ ॥

यत इति। यस्माद् भेदवतो वनस्पतेः स्वं रूपं प्रपश्यन्नप्यस्माद् वनस्पतेः सकाशादभिन्नं पार्श्वस्थाद्वनस्पतेः सकाशादस्य भेदमक्षणा न प्रतिपद्यते । स्वतो धर्मधर्म्य भेदेऽपि ज्ञाताज्ञातत्वदर्शनात्तद्भेदोऽप्रबुद्धत्वानङ्गमित्यर्थः ॥ ४७ ॥

यत इति। जिस कारणसे दूरस्थ भेदवाले वृक्षोंका अपना असाधारणरूप, पासके वृक्षसे अभिन्न रूपसे देखता हुआ भी पुरुष इन वृक्षोंके परस्पर भेदको नेत्रसे नहीं देखता है । स्वतः धर्म और धर्मीका अभेद होने पर भी एकमें ही ज्ञातत्व एवं अज्ञातत्व देखा गया है। अतः धर्म व धर्मियोंका भेद, अज्ञातत्वका प्रयोजक नहीं है, यह अर्थ है ॥ ४७ ॥

स्वभिन्नभेदवादिमतेऽपि ज्ञातस्याज्ञातत्वमविरुद्धमित्याह–

'अनुयोगी और प्रतियोगीसे भेद भिन्न है' इस वादीके मतमें भी ज्ञातपदार्थका अज्ञातत्व विरुद्ध नहीं है, यह कहते हैं–

सप्रत्यभिज्ञनयनोत्थधियो घटादेः स्वाभाविकात्स्ववपुषोनतिरिक्त रूपः ।
स्थेमाऽप्रबोधविषयो विषयत्वमेती-त्यङ्गीकृतं ननु मितेपिघटादिकेर्थे ॥ ४८ ॥

प्रत्यक्ष प्रमाणसे घटादि पदार्थका निश्चय होनेपर भी, उस घटादिके स्वाभाविक स्वरूपसे अभिन्न घटादिका स्थैर्य, प्रथम अज्ञात रहता है, पश्चात् नेत्रजन्य तत्ता इदंतावगाही प्रत्यभिज्ञा रूप ज्ञान द्वारा ज्ञात होता है, यह सभी विद्वानोंने स्वीकार किया है* ॥ ४८ ॥

सप्रत्यभिज्ञेति । मितेऽपि=प्रमाणान्निश्चितेऽपि घटाद्यर्थे तस्यैव घटादेः स्वाभाविकात्स्ववपुषः= स्वरूपादनतिरिक्तः स्थेमा=स्थिरत्वमभेदः पूर्वम-

प्रत्यक्ष प्रमाणसे घटादि पदार्थका निश्चय होने पर भी, उस घटादिके स्वाभाविक स्वरूपसे अभिन्न स्थैर्य प्रथम अज्ञात है, पश्चात् वही स्थैर्य नेत्रसे समुत्पन्न 'सो यह घट है' इत्याकारक प्रत्यभिज्ञा ज्ञानवाले पुरुषके

* घटादिका स्थैर्य पूर्वापर कालके सम्बन्धसे अभिव्यक्त होता है । वह स्थैर्य घटादिके स्वरूपसे अतिरिक्त नहीं है । किन्तु घटादि स्वरूप है । अभिज्ञा प्रत्यक्षसे घटादि जाना जाता है, परंतु घटादिसे अभिन्न स्थैर्य नहीं जाना जाता है । अर्थात् ज्ञात घटादिका स्वरूप भूत स्थैर्य अज्ञात रहता है, पश्चात् प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्षसे उस स्थैर्यका भान होता है । इसप्रकार अंश भेदरहित एकही वस्तुके अभान एवं भानका अनुभव सभीको होता है ।

प्रबुद्धोऽपि सप्रत्यभिज्ञस्य पुंसोनयनोत्था या धीः 'सोऽयं घटः' इति प्रत्यभिज्ञात्मिका तस्याः पश्चाद्विषयो भवतीति सर्वैरप्यङ्गीकृतमित्यर्थः ।

अथवा प्रत्यभिज्ञा=संस्कारः तत्सहितनयनोत्थधिय इत्यर्थः ।

न हि स्थैर्यं नाम कश्चिद्गुणः, क्रिया, धर्मान्तरं वा, अपि तु वस्तुस्वरूपमेव पूर्वापरकालसम्बन्धं निमित्तीकृत्य स्थेमोच्यते । एवं च क्षणिकवादिनां प्रत्यक्षेऽपि घटादौ तदभिन्नस्थैर्याज्ञानं चेत् ज्ञानसाम्राज्यसीमनि प्रतीचि ज्ञातेऽज्ञानाविरोध इति किमु वक्तव्यमिति भावः ॥ ४८ ॥

एवं च निरंशस्यापि सिद्धमात्मनोऽधिष्ठानत्वमित्युपसंहरति—

प्रत्यभिज्ञा ज्ञानका विषय होता है, अर्थात् प्रत्यभिज्ञा ज्ञानसे प्रत्यक्ष होता है, यह सभी विद्वानोंने अङ्गीकार किया है ।

अथवा प्रत्यभिज्ञा यानी संस्कार†के सहित नयनसे उत्पन्न ज्ञानसे यह अर्थ है ।

स्थैर्य, कोई घटादिका गुण या क्रिया या धर्म विशेष नहीं है, किन्तु घटादि-वस्तु स्वरूप है । घटादि वस्तु स्वरूप ही पूर्व उत्तर कालके सम्बन्ध रूप निमित्त करके घटादिका स्थैर्य कहा जाता है । इसीप्रकार क्षणिक वादियोंके मतमें भी घटादिका प्रत्यक्ष होने पर भी घटादिसे अभिन्न स्थैर्यकों जब अज्ञान रहता है, तब ज्ञान साम्राज्यकी परम सीमारूप, ज्ञात प्रत्यगात्मामें अज्ञान अविरुद्ध होकर रहता है, इसमें तो कहना ही क्या है ?, यह भाव है ॥ ४८ ॥

इसप्रकार निरंश आत्मामें भी अधिष्ठानत्वकी सिद्धि होगई, इस विषयका अब उपसंहार करते हैं—

एवं स्फुरत्यपि दृगात्मनि तत्स्वरूपे—णास्फूर्तिभाजिपरिकल्पिततोपपन्ना ।
स्वाज्ञानतो 'जगदिदं' 'परमेश्वरोऽसौ' 'जीवोऽहमित्यपिविभागवतोऽल्पकस्य ॥४९॥

एवं पूर्वोक्त दृष्टान्तके अनुसार चिद् रूपसे प्रत्यगात्माका भान होने पर भी नित्यमुक्त-अद्वैतानन्दरूपसे अभासमान, सर्वाधिष्ठान चेतनमें उसके अज्ञानसे 'यह जगत् है' 'यह परमेश्वर है' 'मैं जीव हूँ' इत्यादि विभागवाले परिच्छिन्न संसारकी कल्पना उपपन्न हो सकती है ॥ ४९ ॥

एवमिति । अनिदं रूपेण स्फुरत्यपि चिदात्मनि नित्यमुक्ताद्वयानन्दरूपेणास्फूर्तिं भाजि अधिष्ठाने स्वाज्ञानमात्रदोषादल्पकस्याहङ्कारादेरध्यस्तता प्रागुक्तयुक्तिभिरुपपन्नेत्यर्थः । अल्पकं रूपं विशिनष्टि-जगदिति । इदमिति साक्षिसिद्ध-

परोक्षरूपसे चिदात्माको भासमान होनेपर भी नित्यमुक्त अद्वयानन्दरूपसे अभासमान चेतनरूप अधिष्ठानमें चेतनका केवल अज्ञानरूप दोषसे परिच्छिन्न अहंकारादि प्रपञ्चका अध्यस्तत्व प्रथम, कही हुई युक्तियोंसे सिद्ध हुआ है । प्रपञ्चके परिच्छिन्नरूपको स्पष्ट दिखाते हैं जगदिति । मूलमें 'इदं' पदसे जगत्का स्वरूप साक्षी सिद्ध है, यह

† प्रत्यभिज्ञा पदसे प्रत्यभिज्ञाका कारण उद्‌बुद्ध तत्तांश विषयक संस्कार, लक्षणासे यहां ग्रहण किया गया है ।

त्वादसाविति परोक्षत्वाद्विभागो=नानात्वं तद्वत इत्यर्थः। यद्यपि स्फुरति चिदात्मनि 'नास्ति न भाति' इति व्यवहारयोग्यतालक्षणमावरणं नास्ति विरोधात्। तथापि तदत्यन्ताभिन्नेऽप्यद्वयानन्द-रूपेऽनुभूयमानत्वादेव तदङ्गीक्रियते, नह्य ज्ञाना वृतत्वं तद्वेष्टितत्वं येन विरोधः स्यात्किन्तूक्तव्यवहा-रयोग्यत्वमेवेति भावः ॥ ४९ ॥

एवमल्परूपस्याध्यस्तत्वे साधितेबन्धतदनर्थ-त्वतत्कारणमुक्ति तदर्थत्वतत्कारणात्मकंषट्कं सि-द्धमित्याह—

कहा है। 'असौ' पदसे परमेश्वर परोक्ष है, यह बतलाया है। इसप्रकारका विभाग यानी नानात्वसे युक्त प्रपञ्च है। यद्यपि भासमान चिदात्मामें 'चिदात्मा नहीं है' 'चेतनका भान नहीं होता है' इसप्रकारके व्यवहार की योग्यतारूप आवरण विरोध होनेसे नहीं होसकता है, तथापि चिदात्मासे अत्यन्त अभिन्न, अद्वैतानन्द-स्वरूपमें 'अहमज्ञः' 'अद्वयानन्दस्वरूपआत्माको नहीं जानता हूँ' इत्यादि अनुभव होनेके कारण 'अद्वैतानन्द आत्मा नहीं है' 'ब्रह्मका भान नहीं होता है' इत्याकारक व्यवहारकी योग्यतारूप आवरण माना जाता है। यदि अज्ञानसे आवृत्तका, वस्तुतः अज्ञानसे वेष्टित अर्थमाना जाता तो विरोध होता, परन्तु 'अज्ञानसे आवृत्तका 'अद्वैतानन्द ब्रह्म नास्ति' 'न भाति' इसप्रकारके व्यवहारकी योग्यता-रूप ही अर्थ माना गया है, इसलिये कुछ विरोध नहीं है, यह भाव है ॥ ४९ ॥

इसप्रकार अल्परूप द्वैत-प्रपञ्चको अध्यस्त सिद्ध करनेपर 'बन्ध, बन्धका अनर्थपना, और बन्धका कारण तथा मुक्ति, मुक्तिकी पुरुषार्थता, और मुक्तिका कारण (आत्मज्ञान) ये छः भी अर्थात् सिद्ध हो गये' यह कहते हैं—

अल्पं रूपं बन्धनं प्रत्यगात्मा, बद्धोऽनेन स्वच्छचैतन्यमूर्तिः।
स्वत्माज्ञानं कारणं बन्धनेऽस्य, स्वात्मज्ञानात्तन्निवृत्तिश्च मुक्तिः ॥ ५० ॥

नामरूपकर्मात्मक परिच्छिन्न-द्वैत संसार ही बन्धन है। इस बन्धनसे निर्मल चैतन्यस्वरूप प्रत्यगात्मा बद्ध हो रहा है। इसके बन्धनका कारण अपने आत्मस्वरूपका अज्ञान है। आत्मज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति होती है, वही मुक्ति है ॥ ५० ॥

अल्पं रूपमिति। अल्पं परिच्छिन्नं कर्तृ-त्वादि, रूप्यत इति रूपं यन्नामरूपकर्मात्मकं तदस्य भूम्नो बन्धनमिव बन्धनमित्यर्थः। ननु कुतोऽ-

अल्प यानी परिच्छिन्न कर्तृत्वादि, जो निरूपण किया जाता है, यह नाम, रूप, एवं कर्मात्मक संसार ही व्यापक-आत्मस्वरूपका बन्धनकी तरह बन्धन है अर्थात् कल्पित बन्धन है।

स्याल्परूपस्यानर्थत्वमित्याह-बद्ध इति । अनेन ह्यल्परूपेण धर्मधर्म्यध्यासात्मकेनात्मा बद्धो निगडितः । स्वच्छोऽप्यस्वच्छ इव विज्ञोऽप्यज्ञ इवानन्दोऽप्यशनायादिविविधदुःखदावदहनप्रदीप्तशिरा इवानिशं बम्भ्रमीति । ननु कूटस्थासङ्गचिदेकरसःसन् कथमयमीदृशीं दशामापन्न इत्यत्राह-स्वात्माज्ञानमिति । स्वाश्रयविषयाज्ञानमेवास्यात्मनो बन्धकारणं नान्यदित्यर्थः ।

नन्वीदृशस्य सहजमोहान्धकूपमग्नस्य विवशस्य कुतो बन्धविच्छित्तिःस्यादित्यत्राह—स्वात्मेति । स्वात्मनोऽद्वयानन्दब्रह्माभेदेन यज्ज्ञानं तत एवास्य समूलबन्धनिवृत्तिरित्यर्थः । तस्या उपादेयत्वमाह—मुक्तिरिति । सा हि मुक्तिरखिलानर्थनिर्मुक्तपूर्णानन्दावाप्तिरूपत्वात् परमपुरुषार्थ इत्यर्थः ॥५०॥

नन्वनादिभावरूपस्याज्ञानस्य ब्रह्मवदेव निवृत्त्यसम्भवात्कुतस्तन्निवृत्तिरूपा मुक्तिः फलमित्याशङ्क्य तस्य मिथ्यात्वेन ज्ञाननिवर्त्यत्वं साधयति—

शंका—इस अल्परूप संसारका अनर्थपना कैसे है ?

समाधान—धर्म धर्मीका अध्यासरूप इस तुच्छसंसारसे आत्मा बद्ध है यानी जकड़ा हुआ है । वस्तुतः स्वच्छ भी आत्मा, अस्वच्छकी तरह, ज्ञानवान् भी अज्ञानीकी तरह, आनन्दरूप भी क्षुधा आदि विविध दुःखरूपी वनाग्निसे जलते हुए शिर वाले की तरह, अतिशय करके निरन्तर भ्रमण करता है ।

शंका—कूटस्थ, असंग, चेतन, एकरस आत्मा ऐसी दशाको क्यों प्राप्त हुआ है ?

समाधान—आत्मामें रहनेवाला तथा आत्माको ही विषय (आच्छादन) करनेवाला आत्माका अज्ञान ही बन्धनका कारण है, और कोई बन्धनका कारण नहीं है ।

शंका—इस तरह स्वाभाविक-अनादि मोहरूपी अन्धकूपमें पड़ा हुआ, पराधीन, दुःखी जीवके बन्धनका विच्छेद कैसे हो ?

समाधान—अपने प्रत्यग् आत्माका अद्वयानन्द ब्रह्मके साथ जो अभेद ज्ञान है, उससे ही जीवके अज्ञानरूपमूल सहित बन्धन की निवृत्ति होती है । मूलसहित बन्धन निवृत्तिकी उपादेयताको कहते हैं—मुक्तिरिति । वह अज्ञान सहित बन्धनकी निवृत्तिरूप मुक्ति ही समस्त अनर्थसे विनिर्मुक्त पूर्णानन्दकी प्राप्तिरूप होनेके कारण परम पुरुषार्थ है, यह मतलब है ॥५०॥

शंका—ब्रह्मकी तरह अनादि भावरूप अज्ञान की निवृत्तिका असम्भव होनेसे अज्ञानकी निवृत्तिरूप मुक्तिफल कैसे होगा ?

समाधान—मिथ्या होनेसे अज्ञान ज्ञाननिवर्त्य है, यह सिद्ध करते हैं—

अज्ञानमप्यविदुषोस्य न तु स्वतोस्ति, चैतन्यनिर्विकृतिताद्वयताविरोधात् ।
अज्ञाततापि्यनवबोधनिबन्धनैव, नात्माश्रयत्वमपि चोदयितव्यमत्र ॥५१॥

आत्माके चैतन्य, निर्विकार, एवं अद्वय स्वरूपसे विरुद्ध होनेके कारण, अज्ञानी आत्माका अज्ञान पारमार्थिक नहीं है, किन्तु कल्पित है। आत्मामें अज्ञानका सम्बन्ध भी अज्ञान-प्रयुक्त ही है। इसमें आत्माश्रयदोषकी शंका भी नहीं करनी चाहिये॥ ५१॥

अज्ञानमपीति। तथाहि, अज्ञस्य स्वात्मनि अज्ञानान्वयः किं स्वाभाविकः कल्पितो वा, नाद्य इत्याह—नत्विति। कुत इत्यत्राह—चैतन्येति। स्वभावत आत्मन्यज्ञानमस्ति चेद्वस्तुभूतं स्यात्, न च स्वप्रकाशचिदात्मके वस्तुतोऽज्ञानं वर्तितुमर्हति। प्रकाशतमसोर्विरोधात्। तथाऽज्ञानमात्मधर्मश्चेत्स्वयं विनश्यदात्मानं विकुर्यात्। 'उपयन्नपयन्धर्मो विकरोति हि धर्मिणम्' इति न्यायात्। तथाऽज्ञानस्य वस्तुत्वे द्वैतापत्तिरिति चित्त्वनिर्विकारत्वाद्वयत्व श्रुतिविरोध इत्यर्थः।

द्वितीयमङ्गीकरोति—अज्ञातताऽपीति। अपिस्त्वर्थः। तथात्वे हि मध्यन्दिनालोकमण्डले कौशिकादिकल्पितान्धकारवदविरोधः स्यादिति भावः। नन्वेवमज्ञानेनैवाज्ञानकल्पनायामात्माश्रयत्वमिति नेत्याह—नात्मेति। अनादि ह्यज्ञानमज्ञानतन्त्रमज्ञातत्वमप्यनादीति क्वात्माश्रय इति

अज्ञानमपीति। इस विषयको प्रश्नादि द्वारा स्पष्ट करते हैं—अज्ञानीके अपने आत्मामें अज्ञानका सम्बन्ध क्या स्वाभाविक है? या कल्पित है? स्वाभाविक नहीं कह सकते हैं—नत्विति। क्यों नहीं कह सकते हैं? इसका उत्तर कहते हैं—चैतन्येति। आत्मामें अज्ञान यदि स्वाभाविक है, तो वह पारमार्थिक हो जायगा। स्वप्रकाश चिदात्मामें वस्तुतः अज्ञान नहीं रह सकता है, क्योंकि—प्रकाश और अन्धकारका विरोध है। और अज्ञान यदि आत्माका धर्म है, तो स्वयं अज्ञान ज्ञानसे नष्ट तो हो जायेगा परन्तु आत्माको विकृत कर देगा। क्योंकि—'धर्मका उपचय (वृद्धि) तथा अपचय (क्षय) धर्मी को भी विकारी बना देता है' यह नियम है। और अज्ञानको पारमार्थिक मानने-पर द्वैतापत्ति हो जायगी, एवं चेतनत्व, निर्विकारत्व, तथा अद्वयत्वस्वरूपको प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियोंसे विरोध भी होगा।

'अज्ञान कल्पित है' इस द्वितीय पक्षको स्वीकार करते हैं—अज्ञाततापीति। अपिका 'तु' अर्थ है। यानी 'अपि' द्वितीय पक्षमें प्रथमपक्षसे विलक्षणता (स्वीकार) का द्योतक है। अज्ञानको कल्पित-सिद्ध होनेपर, मध्यंदिनके सूर्य-प्रकाश मण्डलमें दिवान्ध (उल्लू) आदिसे कल्पित अंधकारका जैसे विरोध नहीं है, तद्वत् स्वप्रकाश आत्मामें कल्पित-अज्ञानका भी विरोध नहीं है, यह भाव है।

शंका-इसप्रकार अज्ञानसे ही अज्ञानकी कल्पना माननेपर आत्माश्रय दोष होगा?

समाधान—नहीं होगा, क्योंकि—अज्ञान अनादि है, अज्ञानके अधीन अज्ञातत्व (अज्ञानका सम्बन्ध)

भावः । यद्वा अत्रानिर्वचनीयवादे नानुपपत्तिर्दूषणमिति भावः ।

केचित्तु सत्कार्यासत्कार्यवादिनोरभिव्यक्तावुत्पत्तौच नात्माश्रयश्चेत्किमु मायावादिन इत्यर्थमाहुः ॥ ५१ ॥

अज्ञानादेवाज्ञानकल्पने प्रमाणमाह—

भी अनादि है, अतः आत्माश्रय दोष (बीजाङ्कुरकी तरह) कहाँ होगा ? नहीं हो सकता यह भाव है ।

अथवा अनिर्वचनीयवादमें आत्माश्रयादि दोषप्रयुक्त अज्ञानकी अनुपपत्ति (असिद्धि) दूषणरूप नहीं है, किन्तु भूषणरूप है ।

कोई आचार्य यहां यह समाधान कहते हैं—जैसे सत्कार्यवादी सांख्यादिकोंके मतमें सत्कार्यकी अभिव्यक्तिकी अभिव्यक्ति माननेपर, तथा असत्कार्यवादी नैयायिक आदिके मतमें असत्कार्य की उत्पत्ति की उत्पत्ति माननेपर जब आत्माश्रयको दोष नहीं माना जाता है, तब मायावादी-वेदान्तीके मतमें आत्माश्रय दोष क्यों माना जायगा ॥ ५१ ॥

अज्ञानसे ही अज्ञानकी कल्पनामें प्रमाण कहते हैं—

द्वारं तमोऽन्वयमपेक्ष्य दृशा हि दृश्यं, संगच्छते सकलमत्र न नो विवादः ।
मोहोपि दृश्यवपुरत्र च संवदध्वे, तस्मात्तदन्वयनिमित्तमपीह मोहः ॥ ५२ ॥

अज्ञान-सम्बन्धरूप निमित्तकी अपेक्षाकरके ही समस्त घटादि दृश्य-प्रपञ्च, चैतन्यआत्माके साथ संयुक्त होता है, इसमें हमलोगोंका कुछ भी विवाद नहीं है । अज्ञान भी दृश्यरूप है, इसमें आपलोगों की भी सम्मति है, अतः आत्मामें अज्ञानका सम्बन्ध भी अज्ञानके ही आधीन है ॥५२॥

द्वारमिति । आत्मन्यज्ञानसम्बन्धोऽज्ञानकृतो दृग्दृश्यसम्बन्धत्वात् घटज्ञानसम्बन्धवत् । प्रसाध्याङ्गकत्वाद्व्याप्तिसूचनार्थो हि शब्दः ।

अयमर्थः—यस्मादसङ्गयादृशा सकलमेव दृश्यं घटादि सम्बध्यमानमज्ञानसम्बन्धं द्वारीकृत्याध्यासिकेन तादात्म्येनवसम्बध्यते, अन्यस्य संयोगसमवायादेरशक्यनिरूपणत्वादिति वक्ष्यति

द्वारमिति । आत्मामें अज्ञानका सम्बन्ध । अज्ञानसे हुआ है, क्योंकि इसमें दृक् (ज्ञान) और दृश्यका सम्बन्धत्व है । घट और घटज्ञानके सम्बन्धकी तरह । 'अज्ञानकृतत्वरूप साध्यकी सिद्धिमें सहायक होनेसे व्याप्तिकी सूचना के लिये 'हि' शब्द कहा है ।

यहां यह तात्पर्य है—जिस कारणसे अज्ञान सम्बन्धको निमित्त बनाकर ही असंङ्ग चेतनके साथ समस्त घटादि दृश्यवर्गका सम्बन्ध है, चेतनका दृश्यके साथ आध्यासिक–कल्पित–तादात्म्य ही सम्बन्ध है । क्योंकि—चेतनके साथ दृश्यका संयोग, समवाय आदि अन्य सम्बन्धका निरूपण अशक्य है । "दृक् और

—'न सङ्करो नापि च संयुतिस्तयोः (सं शा० ३।२२३) इत्यादि । 'आत्मनोऽनात्मना योगो वास्तवो नोपपद्यते' इति च वार्तिकम् । तस्मान्नात्र व्याप्तौ विवदितव्यमित्यर्थः । हेत्वसिद्धिमुद्धरति—मोहोऽपीति । 'अहमज्ञः' इत्यनुभवादित्यर्थः । अत्र चेति । व्याप्तौ विवादो, न तु हेतोः पक्षधर्मत्वे इत्यर्थः । ततश्चात्रापि मोहनिमित्तत्वमिति निगमयति - तस्मादिति ॥५२॥

दृश्यका, भेदाभेदका संकररूप वास्तविक तादात्म्य संबंध तथा संयोग संबंध भी नहीं हो सकता है" इत्यादि ग्रंथ से स्वयं मूलकार तृतीय अध्यायमें कहेंगे । "आत्माके साथ अनात्माका वास्तविक सम्बन्ध उपपन्न (युक्तियुक्त) नहीं हो सकता है" यह वार्तिक ग्रन्थ भी कहता है । इसलिये "जहां जहां दृक् और दृश्यका सम्बन्ध है, वहां वहां अज्ञान—निमित्त है" इस व्याप्तिमें विवाद नहीं करना चाहिये । हेत्वसिद्धि (पक्षमें हेतुके विद्यमानत्व की असिद्धि) का उद्धार करते हैं—मोहोऽपीति । 'मैं अज्ञानी हूँ' ऐसा अनुभव होनेसे आत्मामें अज्ञानका सम्बन्ध है । यद्यपि दृष्टान्तमें व्याप्तिका विवाद नहीं है, तथापि पक्षमें व्याप्तिका विवाद रहता है । परन्तु यहां दृग् दृश्य सम्बन्धत्वरूप हेतु पक्ष (दृग् दृश्यका संबंध) में है' इसमें विवाद नहीं है । इसलिये पक्षधर्मता (हेतुका पक्षमें रहना) के बलसे पक्षमें अज्ञान निमित्तत्व स्वीकार करना चाहिये, यह उपसंहार करते हैं —तस्मादिति ॥५२॥

ननु कथं प्रपञ्चकल्पनोपक्षीणस्याज्ञानस्य स्वकल्पकत्वमपीत्याशङ्क्य स्वपरनिर्वाहकस्वभावत्वादित्याह—

शंका —प्रपंचकी कल्पनामें जो चरितार्थ हो गया है, ऐसा अज्ञान अपनी कल्पना क्यों करेगा ?

समाधान—स्व, पर, निर्वाहक ही अज्ञानका स्वभाव है, अर्थात् अपनी तथा परायी कल्पना करना ही अज्ञानका स्वभाव है, यह कहते हैं—

संविद् धुरं वहति तद्विषयोपयुक्तां, स्वात्मन्यपि स्वरसतः स्वकरूपसिद्धेः ।
कार्यप्रपञ्चपरिकल्पनमात्ममोहात्, मोहप्रकल्पनमपीति तथोपपन्नम् ॥५३॥

जैसे घटादिका ज्ञान, घटादिविषयकी सिद्धिके लिए घटादिविषयका प्रकाशरूप कार्यकरता हुआ स्वरूपकी सिद्धिके लिए स्वभावसे अपना भी प्रकाश करता है । तैसे आत्माका अज्ञान, कार्य—प्रपञ्च की कल्पना करता हुआ अपनी भी कल्पना करता है, यह युक्ति-संगत है ॥ ५३ ॥

संविदिति । यथा हि प्रमाणफलभूता संवित् स्वविषयघटादिसिद्धौ स्वसिद्धौचोपयुक्तां धुरं=

जैसे प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका फलरूप घटादिज्ञान, स्वविषय घटादिकी सिद्धिके लिये, घटादिविषयक

तद्विषयाज्ञान संशयादिनिवृत्तिभावं वहति = उभयमपि साधयतीत्यर्थः। एवमज्ञानादेव प्रपञ्चकल्पनमज्ञानकल्पनं चोपपन्नमित्यर्थः। ननु--संवित्संविदन्तरवेद्यैव स्वस्य स्वविषयत्वासम्भवादित्याशंक्याह—स्वरसत इति। संविदन्तरवेद्यत्वेऽनवस्थानात्स्वसत्तायां संशयादिराहित्यात्स्वव्यवहारे परानपेक्षैव संविदित्याद्युक्तप्रायम् ॥५३॥

संवित्स्वप्रकाशत्वे विप्रतिपन्नं प्रति निदर्शनान्तरमाह—

अज्ञान, संशय आदिकी निवृत्तिरूप उपयोगी कार्य करता है, अर्थात् घटादिविषयकी तथा अपनी (ज्ञानकी) दोनोंकी प्रकाशरूप सिद्धि करता है। इसीप्रकार अज्ञानसे ही प्रपञ्चकी कल्पना तथा अज्ञानकी कल्पना युक्तियुक्त है।

शंका—ज्ञानका प्रकाश अन्यज्ञानसे होता है, क्योंकि—आपही अपनेको विषय (प्रकाश) करे, यह सम्भव नहीं हो सकता।

समाधान—स्वरसत इति। ज्ञानका प्रकाश अन्यज्ञानसे माननेपर अनवस्था-दोष हो जायगा, ज्ञानकी स्वरूपसत्तामें संशय-विपर्यय आदिका अभाव होनेसे अपने (ज्ञान) व्यवहारमें ज्ञान, अन्यज्ञानकी अपेक्षा नहीं करता है, इत्यादि हमने प्रायः कह ही दिया है ॥५३॥

ज्ञानके स्वप्रकाशत्वमें विवाद (संशय) वाले प्रतिवादीके प्रति अन्य दृष्टान्त कहते हैं—

आत्मा प्रसाधयति वेद्यपदार्थजातं, स्वात्मानमप्यवगतिक्षमशक्तियोगात्।
स्वाज्ञानमेवमिदमात्मपरप्रक्लृप्तौ, शक्तं भवेदिति न किञ्चन दौस्थ्यमस्ति ॥५४॥

जैसे आत्मा (प्रमाता-जीव) प्रकाशकरनेमें समर्थ ज्ञानरूपशक्तिके बलसे, वेद्यघटादि पदार्थ समुदायको तथा अपनेको सिद्ध करता है, तैसे यह (साक्षी-सिद्ध) अज्ञान भी 'स्वकल्पनामें तथा स्वकार्य द्वैत-प्रपञ्चकी कल्पनामें समर्थ है' ऐसा माननेमें कुछ भी दूषण नहीं है ॥ ५४ ॥

आत्मेति। यथा आत्मा वेद्यं घटादिकं स्वं चावगतिसमर्थज्ञानाख्यगुणयोगात्साधयति। एवमज्ञानमपि शक्तिवशात्स्वपरकल्पकं स्यादित्यर्थः आत्मकार्यव्यवहार सहकारित्वात् ज्ञानं शक्तिरित्युक्तम् ॥५४॥

नस्वात्मनो ज्ञानाख्यशक्तिमत्त्वादस्तु स्वपरसाधकत्वम्, अज्ञानस्य तु परशक्तिभूतस्य

जैसे आत्मा वेद्यघटादिको तथा अपनेको अवगति (प्रकाश) में समर्थ ज्ञाननामक गुणके सम्बन्धसे सिद्ध करता है। इसी प्रकार अज्ञान भी अपनी शक्तिके बलसे स्वका तथा परका कल्पक है, यह अर्थ है आत्माका कार्य व्यवहारका सहकारी होनेसे ज्ञानको शक्ति कहा है ॥ ५४ ॥

शंका—ज्ञान नामक शक्तिवाला होनेसे आत्मा स्व, परका प्रकाशक हो सकता है, परन्तु अज्ञान तो अन्य (आत्मा) की शक्तिरूप है, शक्तिमें अन्य शक्तिका

योगतत्त्व-मीमांसा

(लेखक—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री जयेन्द्रपुरीजी महाराज मण्डलेश्वर)

[पूर्व प्रकाशित से आगे प्रथमखण्ड]

प्रथम-भूमिका—महत्सेवा

महापुरुषोंकी सेवाकी महिमा श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें व्यास और नारदके सम्वादमें स्पष्ट कही है। भगवान् व्यासके प्रति नारदजीने अपने पूर्व जन्मका वृत्तान्त कहा था कि—मैं पूर्व जन्ममें किसी-दासीका पुत्र था, एक समय सौभाग्यवश चातुर्मास करनेके लिए आये हुए महात्मा—पुरुषोंकी सेवामें मैं नियुक्त किया गया। वालकोचित-खेल—कूदको छोड़ कर श्रद्धाभक्ति पूर्वक मैं इन महात्माओंकी [illegible] करता था, और महात्माओंका उच्छिष्ट भोजन पाता था, सेवाके प्रभावसे मेरा अन्तःकरण शुद्ध हुआ। प्रति-दिन महात्मा लोग भगवान्‌की विमल-चर्चा, एवं कथा करते थे। उसके श्रवणसे मेरी भगवद्भजनमें रुचि हुई। और भजनके प्रभावसे तथा महात्माओंकी दया-दृष्टिसे मुझको देव-दुर्लभ परमात्माका ज्ञान प्राप्त हुआ।

इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरे-
　　विंश्रृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम्।
संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभि-
　　र्भक्तिः प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमोऽपहा॥
तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य, प्रश्रितस्य हतैनसः।
श्रद्दधानस्य वालस्य दान्तस्यानुचरस्य च॥
ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत् साक्षाद्भगवतोदितम्।
अन्ववोचन् गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः॥

(भा० १।५।२८—२९—३०)

वर्षा एवं शरद् ऋतुमें चारमास पर्यन्त महात्मा-मुनियोंके द्वारा प्रतिदिन तीनकाल (प्रातः मध्यान्ह एवं सायं) में कहे हुए भनवान्‌के निर्मल यशको श्रवण करनेवाले मुझको हृदयके रजोगुण एवं तमोगुणको नाश करनेवाली भगवद्भक्ति प्राप्त हुई। सेवामें प्रेम रखनेवाला, नम्र, पापरहित, श्रद्धालु, संयमी मुझसेवक वालकके प्रति चातुर्मासके अनन्तर अन्यत्र जानेवाले दीनवत्सल महात्माओंने कृपा करके भगवान्‌से कहा हुआ अतीवगोपनीय-आत्मज्ञानका उपदेश दिया।

गीतामें भगवान्‌ने आत्म-ज्ञानकी प्राप्ति तत्त्वदर्शी-ज्ञानी महापुरुषोंके समागमसे ही कही है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(४।३४)

तू उस ज्ञानको प्राप्तकर, नमस्कारादिसे, प्रश्न करनेसे, और सेवा करनेसे तत्त्वदर्शीज्ञानी महापुरुष तुझे उस ज्ञानका उपदेश करेंगे।

देवताओंकी सेवासे भी महापुरुषोंकी सेवा, विशेष महत्त्वकी एवं अनन्तसुखप्रद, है। भागवतमें कहा है—

भूतानां देवचरितं, दुःखाय च सुखाय च।
सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम्॥
भजन्ति ये यथादेवान्देवा अपि तथैव तान्।
छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः॥

(भा० ११।२।५—६)

देवताओंके चरित्र, प्राणियोंके सुख-दुःख दोनों ही के कारण होते हैं, परन्तु आप जैसे भगवत्प्राण महापुरुषोंके आचरण प्राणियोंको सुख ही देते हैं। देवताओंको जो पुरुष जिस भावसे भजता है. वे भी उसे वैसा ही फल देते हैं, वे तो छायाके समान कर्मों का अनुसरण करनेवाले हैं, किन्तु साधुजन स्वभाव से ही दीन-रक्षक होते हैं।

अतएव योग, यज्ञ आदि समस्त साधनोंके सेवन

की अपेक्षा महापुरुषोंका समागम शीघ्र ही भगवत्कृपा का साधक सिद्ध होता है। कहा है—

श्रीभगवानुवाच—

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथाऽवरुन्धे सत्संगः, सर्वसंगापहो हि माम्॥
(भा० ११।१२।१-२)

श्रीभगवान् बोले—हे उद्धव! सर्वसंग (आसक्ति) निवारक महापुरुषोंके सत्संग द्वारा मैं जैसा वशीभूत प्रसन्न होता हूँ, वैसा योग, सांख्य, धर्म, स्वाध्याय, तप, त्याग, इष्ट, पूर्त दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, यम, नियम—किसीसे नहीं होता।

भगवद्भक्त-महापुरुषोंका दर्शन दुर्लभ है, तथा उनका अल्प समयका सत्संग भी बड़ी भारी निधिके समान विशेष फलशाली है—

दुर्लभो मानुषो देहो, देहिनां क्षणभङ्गुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये, वैकुण्ठप्रियदर्शनम्॥
अत आत्यन्तिकं क्षेमं, पृच्छामि भवतोऽनघाः।
संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि, सत्संगः शेवधिर्नृणाम्॥
(भा० ११।२।२९-३०)

जीवको प्रथम तो यह क्षणभंगुर मनुष्य-शरीर ही मिलना दुर्लभ है, क्योंकि यह साधन-धाम एवं मोक्षका द्वार है, और उसमें भी भगवद्भक्तोंका दर्शन मिलना तो मैं और भी दुर्लभ समझता हूं! अतः हे निष्पाप महात्मापुरुषो! मैं आपसे यह पूछता हूँ कि—संसार में आत्यन्तिक कल्याण किसमें है? क्योंकि-इस जगत् में महात्माओंका आधेक्षणका सत्संग भी मनुष्योंके लिये बड़ी भारी निधिके समान है।

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका,
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं,
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया॥
(भा०)

'यह मेरा भक्त है, यह नहीं है' इसप्रकारकी भेद बुद्धिवाले, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारा, पृथिवी, जल, आकाश, वायु, आदिके अधिष्ठातृदेवतागण, तथा वाणी एवं मन, बहुकाल पर्यन्त उपासना करनेसे भी पापका कारण अज्ञानको दूर नहीं कर सकते। परन्तु भेद बुद्धि-रहित, महापुरुष एक मूहूर्त्त मात्रसे प्रसन्न हुए, ज्ञानादिके उपदेश द्वारा पापका कारण अज्ञानका विनाश कर देते हैं।

महात्मापुरुषोंकी सेवाके विना भक्ति एवं ज्ञान प्राप्त नहीं होता, स्कन्दपुराणमें कहा है—

ये साधुसेवारुचयः पुरुषा निजशक्तितः।
अप्राप्तं नास्ति तेषां वै किमप्यैश्वर्यमूर्जितम्॥
(ख० २।९।२०)

तस्मात्प्राज्ञैश्च वृद्धैश्च शुद्धभावैस्तपस्विभिः।
सद्भिश्च सह संसर्गः कार्यः शमपरायणैः॥
(ख० १।२।४५)

जो मनुष्य अपनीशक्तिके अनुसार साधु-पुरुषोंकी सेवामें प्रीतिवाले हैं, उनको कोई भी सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य ऐसा नहीं है जो प्राप्त न हो सके, अर्थात् सत्पुरुषोंकी सेवासे सब कुछ प्राप्त हो सकता है! इसलिये कल्याण की इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको, बुद्धिमान्-विवेक विचारशील वृद्ध-अनुभवी, शुद्ध भाववाले एवं तपस्वी सत्पुरुषोंके साथ अपना संसर्ग रखना चाहिये।

सेव्याः श्रेयोऽर्थिभिः सन्तः पुण्यतीर्थजलोपमाः।
क्षणोपासनमप्यत्र न येषां निष्फलं भवेत्॥
(स्कन्द पु० ७।३३८-६१)

जिसप्रकार गंगादि पवित्र तीर्थोंका जल, मनुष्यके पापोंको दूर करते हैं, तद्वत् दर्शन-उपदेश आदिके द्वारा समस्तपापोंको नाश करनेवाले पवित्र जंगम तीर्थरूप, सत्पुरुषोंका अपने कल्याणकी इच्छा रखने-वाले मनुष्योंको सेवन करना चाहिये, क्योंकि एक

क्षणमात्रके लिये किया हुआ सत्समागम भी व्यर्थ नहीं होता है :

सत्संगश्च विवेकश्च निर्मलनयनद्वयम् ।
यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गकः ॥
(म० ग० पु० ध० का० अ० ४९-५७)

सत्संग और विवेक ये दो निर्मल-दो नयनके समान हैं, जिसको सत्संग और विवेकरूपी निर्मल-नेत्र नहीं है, वह चर्म चक्षु रहने पर भी अन्धा माना जाता है। अतएव वह अन्धा विपरीत-मार्ग गामी क्यों न होगा, अर्थात् अवश्य होगा।

आचार्य भगवत्पाद श्रीशंकर स्वामीजीने भी कहा है—

सत्संगत्वे निःसंगत्वं, निःसंगत्वे निर्मोहत्वम् ।
निर्मोहत्वे निश्चलितत्वं, निश्चलितत्वे जीवन्मुक्तिः ॥
(मो० मु०)

सत्पुरुषोंके समागमसे संसारकी सर्वप्रकारकी आसक्ति छूट जाती है, आसक्ति छूटजानेपर मोह-निवृत्त हो जाता है, मोहके निवृत्त होनेपर तत्त्वज्ञानकी स्थिरता होती है, और तत्त्वज्ञान-स्थिर होनेपर जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है।

त्रिजगति सज्जनसंगतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका ।
(मोह-मु०)

संसार-समुद्रके तरनेके लिए, इस तीन लोकमें एक-मात्र सत्संगरूपी नौका ही श्रेष्ठ साधन है।

स्कन्दपुराणमें कहा है—

सृष्ट्वेमान्सकलांल्लोकान्पश्चात्तेषामवस्थितिम् ।
आमुष्मिकीमैहिकीं च द्विविधां पर्यकल्पयत् ॥
हेतुत्रयं च प्रत्येकं हेतुः स्थित्यै महाप्रभुः ।
जलसेवा चान्नसेवा सेवा चैवौषधस्य च ॥
साधुसेवा विष्णुसेवा, सेवा धर्मपथस्य च ।
पुरा सम्पादिता ह्येते परलोकस्य हेतवः ॥
(खं० २।७।८-९-१०)

सम्पूर्णप्रजाओंकी सृष्टि करनेके बाद परमात्माने इसलोकमें एवं परलोकमें रक्षा करनेवाले दो उपायोंकी कल्पना किया। और उस एक एक उपायके तीन तीन भेद कहे। इस लोकमें जल-सेवन, अन्न-सेवन, एवं औषध-सेवन ये तीन रक्षाके साधन बतलाये। और परलोकमें साधु-सेवा, विष्णु-सेवा एवं धर्म सेवा ये तीन रक्षाके तथा सुख शान्तिके साधन बतलाये।

योगवाशिष्ठमें कहा है—

सच्छास्त्रसत्संगमजैर्विवेकैस्तथा विनश्यन्ति बलादविद्या ।
यथा जलानां कतकानुपङ्गाद्यथा जनानां मतयोऽपि योगात् ॥
(३।६।२२)

जैसे कतकरेणु (निर्मली-बूटी) के सम्बन्धसे जलका मल नष्ट होजाता है, एवं जैसे योगाभ्याससे मनुष्योंकी मतियोंकी मलिनता (पाप-वासना) नष्ट हो जाती है, तैसे सच्छास्त्रके विचारसे तथा सत्पुरुषोंके समागमसे उत्पन्न होनेवाले विवेकसे सकल-अनर्थका मूल कारण अविद्या नष्ट होजाती है।

साधुसंगतरोर्जातं विवेककुसुमं सितम् ।
रक्षन्ति ये महात्मानो भाजनं ते फलश्रियः ॥
शून्यमाकीर्णतामेति मृतिरप्युत्सवायते ।
आपत् संपदिवाभाति विद्वज्जनसमागमे ॥
(२।१६।२-३)

सत्संगरूपी वृक्षसे उत्पन्न विवेकरूपी सफेद (शुद्ध) पुष्पकी जो महात्मालोग रक्षा करते हैं, वे मोक्षरूपी फलको पा लेते हैं। विद्वान् सदाचारी महापुरुषके समागमसे शून्य स्थान भी पूर्ण मृत्यु भी आनन्दमय, एवं विपत्ति भी सम्पत्तिरूप हो जाती है।

विशेषेण महाबुद्धे ! संसारोत्तरणे नृणाम् ।
सर्वत्रोपकरोतीह साधुः साधुसमागमः ॥
(यो० वा० २।१६।१)

वसिष्ठजी बोले—हे बुद्धिमान् रामचन्द्र ! संसार

सागरके पार जानेके लिये सत्पुरुषोंका समागम ही परम साधन है।

मार्कण्डेय पुराणमें मदालसा-राणीका वृत्तान्त है। मदालसा कुवलयाश्व महाराजकी धर्मपत्नी थी। विक्रान्त, सुवाहु, शत्रुमर्दन, एवं अलर्क नामके चार उसके पुत्र थे। तीन पुत्रोंको मदालसाने तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर संसारसे विरक्त बनाकर वनमें भेजदिया। मदालसाका उपदेश बड़ाही हृदय-ग्राही एवं प्रभावशाली होता था। मदालसाका उपदेश इसप्रकारका था—

शुद्धोऽसि रे तात ! न तेऽस्ति नाम,
कृतं हि ते कल्पनयाऽधुनैव ।
पञ्चात्मकं देहमिदं न तेऽस्ति,
नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः ॥
शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि,
संसार मायापरिवर्जितोऽसि ।
संसारस्वप्नं त्यज मोहनिन्द्रां,
मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम् ॥

हे तात ! (प्रिय पुत्र) तू शुद्ध है, तेरा कोई नाम नहीं है, अभी ही कल्पना करके शरीरका नाम रक्खा गया है। पांच भूतोंका यह शरीर तेरा नहीं है, न तू इस शरीरका है अतः तू क्यों रो रहा है ? तेरे शुद्ध स्वरूपमें रोना नहीं बन सकता। तू शुद्ध है, बुद्ध (ज्ञानघन) है, निरञ्जन है, संसारकी मायासे नितान्त विमुक्त है, यह संसार मोह (अज्ञान) रूपी निद्रासे प्रतीत होनेसे स्वप्नके समान मिथ्या है। अतः मोह निद्राको छोड़कर संसार स्वप्नसे जाग जा। अपने शुद्ध स्वरूपका अनुभव कर, इसप्रकार मदालसाने अपने पुत्रोंके प्रति तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया।

चतुर्थ पुत्र अलर्कको राजधर्मादिका उपदेश दिलाया गया। और उसको राजाबनाकर कुवलयाश्व और मदालसा दोनों बनमें चल पड़े। वनमें जाते समय मदालसाने अलर्कको एक तावीज-जिसके भीतर एक कागजमें उपदेश लिखा था बांध दिया, और कहा कि-जिस समय तूझे कोई कष्ट प्राप्त हो उस समय इसे खोलकर देखना, तेरा कष्ट दूर हो जायगा। कुछ समय तक तो अलर्क राज-भोगमें मस्त रहा। विषय भोगमें आसक्त अलर्कको संसारसे विरक्त बनानेके लिए एवं तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिए सुवाहु आदि बड़े भाइयोंने उपदेश दिया, परन्तु अलर्कने उनका थोड़ा भी उपदेश नहीं ग्रहण किया। प्रत्युत उनके उपदेश को उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगा। "जब तक कोई कष्ट नहीं प्राप्त होता, तबतक विषयान्ध राजा लोग उपदेश नहीं ग्रहण करते" ऐसा विचारकर सुवाहु आदि विरक्त भाइयोंने काशीके राजासे मिलकर अलर्कके राज्यमें अनेक प्रकारके उपद्रव मचाना शुरु कर दिया। उपद्रवसे अलर्क बहुत ही दुःखी हुआ। उस समय माताका बाँधा हुआ तावीज खोलकर देखा तो माताके लिखे हुए दो उपदेशके श्लोक उसे मिले।

संगः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्यक्तुं न शक्यते ।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां संगो हि भेषजम् ॥
कामः सर्वात्मना हेयः हातुं चेच्छक्यते न सः ।
मुमुक्षां प्रति स कार्यः, सैव तस्यापि भेषजम् ॥
(मार्क० पु० ३३।२३-२४)

संसारके पदार्थोंकी आसक्ति, सभीप्रकारसे परित्याग करने योग्य है। उसके परित्याग करनेकी सामर्थ्य न हो तो, विषय-विरक्त सत्पुरुषोंके समागममें प्रेम रखना चाहिये। क्योंकि-सत्पुरुषोंका संग, सांसारिक-आसक्तिरूपी रोगकी निवृत्तिका सर्वश्रेष्ठ औषध है। काम (इच्छा) सभी प्रकारसे परित्याग करने योग्य है, उसके त्याग करनेकी सामर्थ्य न हो तो वही काम मुमुक्षा (मोक्षकी) इच्छाके प्रति जोड़ना चाहिये। क्योंकि मोक्षेच्छा संसारकी सकल-इच्छाओंकी निवृत्तिका साधन है।

माताके इस उपदेशसे दुःखी अवस्थामें अलर्क को वैराग्य उत्पन्न हुआ। मुमुक्षुता, एवं सत्समागम ही कल्याणका साधन है, दुःखनिवृत्तिका उपाय है, ऐसा उसने निश्चय किया अवधूत शिरोमणि भगवान् दत्तात्रेयजीके शरणमें जाकर अलर्कने तत्त्वज्ञानका उपदेश ग्रहण किया, और अपने विरक्त सुबाहु आदि भाइयों को बुलाकर कहा कि-आप लोग इस राज्यको ग्रहण करो, अब मैं इस समग्र उपाधिसे विरक्त होकर परमात्मामें अपने चित्तको लगाकर परमशान्ति ग्रहण करना चाहता हूँ। सुबाहु आदिने अपना गुह्य अभिप्राय अलर्कके प्रति प्रकट किया कि—

हमने राज्यके लिए उपद्रव नहींकियाथा, किन्तु तुझमें विषयवैराग्यके प्रादुर्भावके लिए उपद्रव कियाथा, अब हमारा मनोरथ सिद्ध होगया है, ऐसाकहकर सुबाहु आदि विरक्त भाई वनमें अपने आश्रमपरचले गये। अलर्क भी अपनेज्येष्ठ पुत्रको समग्र राज्यकाभारसुपुर्दकर वनमें चलपड़ा।

इस कथासे महापुरुषोंके समागमका महत्त्व स्पष्ट प्रतीत होता है।

(क्रमशः)

उन्मत्तोंका विनोद

(लेखक—परमहंसब्रह्मनिष्ठ स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी महाराज)

गीता किसने सुनी, किसने सुनायी और किसने सुनवायी ? धृतराष्ट्रने सुनी, उसीने सुनवायी और संजयने सुनायी। नहीं, धृतराष्ट्रने सुनी, संजयने सुनायी और व्यास भगवान्ने सुनवायी ! यदि व्यास भगवान् संजय को दिव्य दृष्टि न देते, तो वह कहांसे सुनाता, इसलिये व्यास भगवान्ने गीता सुनवायी है, संजयने सुनायी है और धृतराष्ट्रने सुनी है। नहीं, अर्जुनने सुनी है, उसीने सुनवायी है और कृष्ण भगवान्ने सुनायी है, पीछे अठारह अक्षोणी सेनाने व संजयने सुनी है फिर संजयसे धृतराष्ट्रने सुनी है, इसलिये गीता का सुनवाने वाला मुख्य अर्जुन ही है। नहीं गीताका सुनवाने वाला सुयोधन है, जिसने सुयोधन होकर भी अपना नाम दुर्योधन धराकर अनेकों प्रयत्न करने कराने पर भी महा संग्राम कराकर ही छोड़ा, किसी की न सुनी, अपने निश्चय पर ही डटा रहा, प्राण दे दिये अपना प्रण नहीं छोड़ा; यदि वह अपना प्रण छोड़कर संधि कर लेता, तो न तो युद्ध होता, न अर्जुन को मोह होता और न गीता सुनायी जाती, इसलिये गीताका सुनवाने वाला दुर्योधन अथवा सुयोधन ही है ! अन्य नहीं है !

नहीं, स्थूल दृष्टिसे देखा जाय, तब तो ऐसा ही है परन्तु विचार दृष्टिसे देखा जाय, तो ऐसा नहीं है। 'ईश्वरः सर्व भूतानाम्' इस न्यायसे ईश्वर सब भूतोंके हृदयमें स्थित है, वह ही मायाके चक्रपर चढ़े हुए भूतोंको भ्रमाता है—अनेक प्रकारके कर्म कराता है। दुर्योधनने स्वयं ही कहा है—'मैं धर्मको जानता हूँ, फिर भी मेरी उसमें प्रवृत्ति नहीं होती, अधर्मको भी मैं जानता हूँ परन्तु उससे निवृत्त नहीं हो सकता—बच नहीं सकता, इससे मैं समझता हूं कि-कोई देव मेरे हृदयमें बैठा हुआ है, जैसे वह मुझे नियुक्त करता है-जिस कर्ममें मुझे लगा देता है, वह ही मैं करने लगता हूँ। और भी कहा है—'सबै नचावत राम गोसाईं' इससे भी सिद्ध होता है कि-जैसे सूत्रधार कठपुतलियों को, ऐसे ही ईश्वर सब प्राणियों को नचाता है। एक रामका भक्त कहता है—'खावे राम, खिलावे राम, गावे राम, गवावे राम, नाचे राम, नचावे राम' इत्यादि

समस्त क्रियायें राम की ही बतायी हैं। कोई कहे कि तब तो भक्तोंका पुरुषार्थ करना—कर्म, उपासना, ज्ञान, जप तप आदि करना निष्प्रयोजन हो जायगा, तो ऐसा नहीं है, भक्तके हृदयमें बैठे हुए भगवान् ही पुरुषार्थ करते हैं, भक्तका अभिमान वृथा है, जो भक्त ऐसा मानता अथवा जानता है कि–मैं पुरुषार्थ करता हूं, उसने भक्तोंका संग नहीं किया है और भगवान् कैसे हैं, कहां रहते हैं इसका उसे कुछ भी पता नहीं है, इतना ही नहीं, उसे अपना भी पता नहीं है, उसकी भक्ति नाम की ही भक्ति है। अस्तु ! उपरोक्त विचारसे सिद्ध है कि–धृतराष्ट्र, संजय, व्यास, अर्जुन, इनमेंसे कोई भी गीताका सुनाने वाला, सुनवाने वाला और सुनने वाला नहीं है, कृष्ण ही सुनने, सुनवाने और सुनाने वाले हैं। जैसा कि श्रुति कहती है—'उसके सिवाय दूसरा श्रोता द्रष्टा, मन्ता, बोद्धा, कर्त्ता, कारियता नहीं है।' इससे सिद्ध हुआ कि कृष्णने ही गीता सुनायी है, कृष्णने ही सुनी है और कृष्णने ही सुनवायी है।

'मामजमव्ययम्' इससे कृष्ण तो अपने को अजन्मा और अव्यय—निर्विकार बताते हैं, अज और अव्यय में क्रिया नहीं हो सकती, तब कृष्ण गीता कैसे सुन, सुना अथवा सुनवा सकते हैं। ठीक है, ऐसे कृष्ण नहीं सुना सकते, न सुन सकते हैं और न सुनवा ही सकते हैं, फिर भी अनन्त शक्ति वाले भी तो कृष्ण हैं ही, जैसे कि श्रुति कहती है—'ज्ञान, क्रिया और बल, इसकी अनेकप्रकार की शक्तियां हैं 'वह चलता है, वह नहीं चलता' इत्यादि अनेक श्रुतियोंसे ब्रह्मका—कृष्णका अनेक शक्तियों वाला होना सिद्ध है, इसलिये स्वरूपसे कृष्ण अक्रिय, असंग, अव्यय और अज होकर भी मायासे गीता सुनाते हैं, सुनते हैं और सुनवाते भी हैं, 'ऐसा करने की कृष्णको क्या आवश्यकता है।' यह जानने की जिसको इच्छा हो उसे गीता का श्रवण मनन और निदिध्यासन करना चाहिये। उसीके जाननेके लिये अर्जुनने गीता सुनी है और कृष्णने सुनायी है। अथवा यों कहना चाहिये कि–दूसरों को जतानेके लिये अर्जुन सर्वज्ञ बनकर भी अल्पज्ञ बन गये हैं, निर्मोह निःशोक होकर भी मोह धारण करके शोक करने लगे हैं। जैसे भगवान्के चरित्र अगम्य हैं, ऐसेही भक्तोंकी लीला भी अगम्य हैं–हम सरीखोंकी समझसे बाहर हैं, इसलिये आज बैठकर गीताका ही विचार करते हुए इस उलझन को सुलझावें। विद्वानों का वचन है कि–जो शब्द या वाक्य समझमें न आवे, उसे एकाग्रमें विचारे, तो उसी शब्द या वाक्यमेंसे शब्दका या वाक्यका अर्थ निकल आता है।

समस्त गीताका अर्थ विचारनेमें तो बहुत कालकी अपेक्षा होगी, दो चार श्लोकोंका विचार कर लेना पर्याप्त है, जो श्लोक सर्वोत्तम हो, उसका अर्थ ही इस समय समझना समझाना ठीक जचता है। सबसे उत्तम श्लोक कौन सा है ? काले २ सब एकसे, उनमें उत्तम मध्यम और कनिष्ट क्या ! सब एक ही हैं, चाहे जिसका विचार करलो ! भाई ! यह बात तो कुपढ़, निरक्षरों की है—काला अक्षर भैंस बराबर, ऐसोंका सा यह कथन उनका है, जिनकी दृष्टिमें सब अक्षर चेंटोंके गोड़—पैर हैं, पर लिखे अक्षरको हम सब एक सा कैसे मान सकते हैं ? उत्तम श्लोक सोच विचार कर जान लेना चाहिये और उसीका अर्थ विचारना उचित है। अजी ! गीतामें सब पद ही तो हैं, पद होने से सब एक हैं, जैसे पृथिवी, जल, तेज वायु, आकाश पांच होते हुए भी एक ही हैं, क्योंकि भूतत्व–भूत पना पांचोंमें समान है, इसीप्रकार पदत्व सब पदोंमें समान है, इसलिये सब एक हैं। नहीं ! जैसे भूतत्व समान होनेपर भी पांचों भूतोंके गुण भिन्न २ होनेसे उनका लक्षण और स्वरूप भिन्न २ है। इसीप्रकार पदत्व सब पदोंमें समान होने पर भी उनका अर्थ भिन्न २ है, इसलिये सब पद पद होनेसे एक नहीं हैं,

भिन्न २ अर्थवाले होनेसे भिन्न २ ही हैं और भिन्न २ अक्षर वाले होनेसे भी भिन्न २ हैं, तव एक कैसे कहते हो, ऐसा करनेसे तो हमारा पढ़ना लिखना व्यर्थहो जायगा ! अक्षर भिन्न २ हैं, पद भिन्न २ हैं. वाक्य भिन्न २ हैं, यह स्पष्ट है, फिर एक कैसे हैं ।

अजी ! आपका पढ़ना लिखना व्यर्थ हो या सार्थक हो, उसका यहां पर प्रश्न नहीं है, सार्थक और निरर्थक का तो पीछे विचार किया जायगा । मैं कहता हूँ-अक्षर पद आदि एक हैं, तुम कहते हो, भिन्न २ हैं, पहिले तो इसका निर्णय करो कि हम दोनोंमेंसे किसका कथन ठीक है । भाई ! हमें तो भिन्नता स्पष्ट भासती है, तुम एकता सिद्ध करो ! देखिये, अक्षर तो एक ॐकार है ॐकारमेंसे सव अक्षर निकले हैं, अक्षरोंसे पद बनते हैं, पदोंसे वाक्य बनते हैं, वाक्योंसे श्लोक बनते हैं, कारण से कार्य भिन्न नहीं होता किन्तु कारण रूप ही होता है । इसलिये अक्षर पद वाक्य आदि सब ॐकार रूप हैं, इसलिये सव एक ही हैं । श्रुति कहती है कि-यह सब जो कुछ है, सब ॐकार है । इसलिये सब ओंकार होनेसे एक ही हुए । अच्छा ! सब पद एक ही सही, परन्तु उनका अर्थ तो भिन्न २ है हो? नहीं, ऐसा नहीं है, अर्थ भी सवका एक ही है । पतञ्जलि पाणिनि सूत्रोंके भाष्यमें कहते हैं कि-सर्व शब्द सर्व अर्थके वाचक हैं. इससे सिद्ध होता है कि-सर्व शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं । पतंजलि भगवान् यह भी कहते हैं कि-सवका परिणाम एक होनेसे वस्तुतत्त्व एक ही है और वस्तुका समभाव होनेपर भी चित्तके भेदसे उन दोनोंका भेद है । श्रुति तो पूर्वमें कही ही है कि-सव ॐकार ही है, इसलिये अक्षर पद आदि सब एक हैं, और उनका अर्थ भी एक ही है, तब कौनसे श्लोक को उत्तम, कौनसे को मध्यम और कौनसे को कनिष्ठ कहा जाय, सर्व ही उत्तम होनेसे सब समान हैं, यह सिद्ध हुआ ।

ठीक है परन्तु इससे तो सिद्ध हुआ कि-वेद शास्त्र, पुराण इतिहास आदि सवका एकही अर्थ है; तब चार वेद, छः शास्त्र, अठारह पुराण, इतिहास और इनके सिवाय वड़े २ लम्बे चौड़े ग्रन्थ व्याकरण आदि क्यों बनाये गये हैं । क्या हमको भ्रममें डालनेके लिये बनाये गये हैं ? गीता को भी सातसो श्लोकोंमें लिखने की क्या आवश्यकता थी, एकही अक्षर अथवा पदसे समस्त गीताका अर्थ बना देना चाहिये था, ऐसा क्यों नहीं किया गया, विस्तार क्यों किया गया ! सवका अर्थ एकही है, यह ठीक है, एक ही अक्षरसे सवका अर्थ बताया भी है, परन्तु जिनकी बुद्धिमें अनादि-कालसे इस आदि, मध्यरहित संसारके अनेक पदार्थ भरे हुए हैं, और जो इस दिखायी देनेवाले विश्वको ही सच्चा मानते हैं, जानते हैं और उसीमें वर्ताव करते हैं, इनकी बुद्धिमें एक शब्द कहनेसे एक अर्थ कैसे आ सकता है । जिनको नाम रूप संसारमें अनेकनाम और अनेकरूप सच्चे प्रतीत हो रहे हैं, जिन्होंने एकके ही अनेक नाम रूप कल्प लिये हैं, वे एक शब्द कहनेसे एक अर्थ को नहीं समझ सकते, इसलिये वेदने और वेद मूलक अन्य शास्त्रोंने उनके व्यवहार की सिद्धिके लिये और उनकी बुद्धिका विकास करनेके लिये एक ही अर्थका अनेक नामोंसे वर्णन किया है, जिस किसी भाग्यवान् की अनेक जन्मों तक ईश्वरार्पण बुद्धिसे पुण्यकर्म करनेसे ईश्वरके प्रसादसे बुद्धि शुद्ध हो जाती है और जो इस संसारके भोगोंसे विरक्त होकर अपार संसारके अन्दरसे निकलना चाहता है, उसको एक अक्षरसे, एक पदसे, एक वाक्यसे, एक श्लोकसे, एक गीता शास्त्रसे, एक उपनिषद्से, दश उपनिषदोंसे अथवा एक सौ आठ उपनिषदोंसे उस एक अर्थका ज्ञान हो जाता है, वह उस एक अर्थके अवलम्बनसे इस संसार अपार समुद्रसे तर जाता है, दूसरे तो नाम रूप संसारमें डूबते उछलते गोते खाते ही रहते हैं । उस एक अर्थको गीता कैसे समझाती है, यह विचार हमारा कर्तव्य है ।

तब गीताका अर्थ क्या है ? गीताका वह ही अर्थ है, जो सर्व शब्दका अर्थ है, अथवा जो ॐकार का अर्थ है, 'यह सर्व ओंकार है' इस श्रुतिसे जो सर्व है. वह ओंकार है, और जो ओंकार है, वह सर्व है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह सब निश्चयसे ब्रह्म ही है, इस श्रुतिसे जो यह सब है, वह ब्रह्म है। इसप्रकार सर्व, ओंकार और ब्रह्म तीनों पर्याय हैं—एक ही अर्थके वाचक हैं, तीनोंका एक ही अर्थ है। वह अर्थ क्या है ? सुनिये ! वह अर्थ-सर्व है, सर्वज्ञ है, सर्ववित् है, सर्वाधार है, और सर्वका अधिष्ठान है, जैसे रज्जुमें सर्प अथवा मरुमें मरीचिकाजल, ऐसे ही सर्वमें जगत् अध्यस्त—आरोपित—कल्पित है। अध्यस्त की सत्ता अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होती, इसलिये यह सर्व है, सामान्य रूपसे सबको जानता है—सर्वका प्रकाशक है, इसलिये सर्वज्ञ है। विशेष रूपसे भी वह सर्व को जानता है, क्योंकि सर्व की बुद्धिमें स्थित होकर वह ही समस्त अध्यस्त पदार्थों को जानता है, इसलिये सर्वज्ञ है। सूत्र जैसे मणियोंको, ऐसे ही सूत्रात्मा होकर सबको धारण करता है—सर्वका प्राण होकर सर्वको धारण करता है, इसलिये सर्वाधार है। सर्व अध्यस्त की उसके बिना सिद्धि नहीं होती, इसलिये सर्वका अधिष्ठान है, यह तो ऊपर कह ही दिया है। जिसके बिना किसी की भी सिद्धि न हो, वह ही सर्व शब्दका यथार्थ अर्थ है और वह ही गीता का अर्थ है, यह सिद्ध हुआ। जीवका, जगत् का और ईश्वर का सवंरूप ब्रह्म ही तत्त्व है।

किसी दृष्टान्तसे समझाइये, जिससे जल्दी समझमें आ जाय ! फोनोग्राफ बाजा तो आपने देखा ही है, बहुतसे फोनोग्राफ मिलाकर जगत् समझो, एक फोनोग्राफ को जीवका शरीर समझो, एकमें भरे हुए रागोंको एक जीव की वासनायें समझो, सबमें भरे हुए रागों को ईश्वर की वासनायें समझो, एक बाजेके रागोंके जाननेवालेके समान एक देह की वासनाओंके जानने वालेको जीव समझो, सर्व-बाजोंके रागोंके जानने वालेके समान सर्व शरीरों की वासनाओंके जानने वालेको ईश्वर समझो ! जब बाजा नहीं बजता, तब राग सुनायी नहीं देते, उसीप्रकार सुषुप्तिमें वासनायें और वासनाओंके कार्य विक्षेप दिखायी नहीं देते, जब बाजा बजता है, तब राग सुनायी देते हैं, उसी प्रकार स्वप्न और जाग्रतमें विक्षेप दिखायी देते हैं। जैसे सब बाजोंका न बजना एक सा ही है, उसीप्रकार सब जीवोंकी सुषुप्ति एक सी है। जैसे बाजोंका बजना भिन्न २ है, उसीप्रकार जीवोंकी स्वप्नावस्था और जाग्रदावस्था भिन्न २ है। जैसे सब बाजोंके न बजनेमें एकता है, उसीप्रकार सुषुप्तिमें सब जीवोंकी एकता होनेसे ईश्वरके साथ एकता है, क्योंकि समष्टि जीव मिलकर एक ईश्वरके कहनेमें आता है। जैसे बाजेमें भरे हुए राग बाजेमेंसे निकाल लिये जांय, तो वह बाजाही न रहे, उसीप्रकार जिस जीवमें से वासनायें निकल जाती हैं, उसके लिये न अन्य जीव रहते हैं, न ईश्वर पना रहता है, एक अद्वितीय आत्मा ब्रह्म ही शेष रहता है। ब्रह्म ही मुक्ति है, यह ही सबका स्वरूप है, यह ही सुख है, यह ही स्वतंत्रता है, यह ही सब वेदों का अर्थ है, यह ही गीताका अर्थ है, इसको जानना ही पुरुषार्थ है। इसको जान लेनेसे सब जान लिया जाता है, कुछ जानना शेष नहीं रहता, इसको प्राप्त करनेसे सब प्राप्त कर लिया जाता है, क्योंकि इसके सिवाय सब विकल्प है, और विकल्प वस्तु नहीं है, किंतु मानो गन्धर्वके समान मिथ्या है। जैसे स्वप्न और मनोराज्य मनका खेल होनेसे व्यभिचारी हैं, और व्यभिचारी होनेसे मिथ्या हैं, उसीप्रकार यह जगत् मनका रचा हुआ है, इसलिये व्यभिचारी है, और व्यभिचारी होनेसे मिथ्या है। एक ब्रह्म सर्वका आत्मा—स्वरूप ही सच्चा है।

(क्रमशः)

"गुजराती विभाग"

(संपादक—यतिमुकुन्दाश्रमजी खंभात)

प्रभु-प्रार्थना

[ઝુલણા છન્દ]

ધ્યાન ધરી આપના ચરણનું, હે પ્રભુ! પ્રાર્થના હું કરૂં નમ્ર નાથ!
આપ કરૂણા કરી, આપના બાળને, આવી કરજો પ્રભુજી! સનાથ-૧

રીઝવું આપને કઈ, પ્રભુ! રીતથી, તે તણું છે નહિ, નાથ! જ્ઞાન,
સુઝી તેવી પ્રભુ! પ્રાર્થના મેં કરી, આપ તે ઉપરે દેજો ધ્યાન-૨

હે પ્રભુ! આશરો એક છે આપનો, આપ વિણ કોણ કલ્યાણ કરશે?
ભક્તિના માર્ગમાં વિઘ્ન વિધવિધ ઘણાં, આપ વિણ કોણ તે સર્વ હરશે?-૩

તારી અહલ્યા તમે, ચરણના સ્પર્શથી, આપ ઉરે દયા, નાથ! આણી;
એજ રીતે પ્રભુ! અધમ છું તે છતાં, તારજો મુજને બાળ જાણી-૪

નાથ! રક્ષા કરી, ભક્ત પ્રહલાદની, પ્રકટ થઇને પ્રભુ! સ્હાય આપી,
છાતીએ દાબીને હેત દર્શાવીયું, ભક્તનું નાખીયું કષ્ટ કાપી-૫

ચીર પૂરી પ્રભુ! દ્રૌપતીને તમે, લાજ રાખી સભામાં પધારી;
આપના ચરણની પ્રેમી શબરી વળી, તેને પણ નાથ! આપેજ તારી-૬

એવી રીતે પ્રભુ! આપ તત્પર સદા, ભક્તનાં કષ્ટને નાથ! હરવા,
હું નથી પાત્ર, છતાં દયા દિલ ધરી, આવજો દાસનું શ્રેય કરવા-૭

શ્રીમત્પરમહંસપરિવ્રાજકાચાર્ય-અદ્વૈતબ્રહ્મવિદ્યામાર્તણ્ડ બ્રહ્મનિષ્ઠ મણ્ડલેશ્વર

પૂજ્યપાદ સ્વામી શ્રીજયેન્દ્રપુરીજી મહારાજનો સદુપદેશ

[અનુવાદક—વ્યાખ્યાનાવાચસ્પતિ સ્વામી શ્રીમુકુન્દાશ્રમજી મહારાજ]

મનથી વાણીથી અને શરીરથી પવિત્ર રહો. પવિત્ર વિચારથી અને પવિત્ર આચારથીજ મનુષ્ય પવિત્ર બને છે. આચારનું મૂલ વિચાર છે. 'જેવા વિચાર તેવો આચાર એ પ્રસિદ્ધજ છે. પવિત્રત વિચારજ સફલતાની અને સર્વ આપત્તિઓ દૂર કરવાની ગુપ્ત કુચી છે. પવિત્ર વિચારો વિના મનુષ્ય પોતાની ઉન્નતિ કદિ કરતોજ નથી. વેદ ભગવાનમાં પણ એજ દર્શન થાય છે.

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु । (यजुर्वेद)
सनो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु । (श्वेताश्वतर)

સાધક મનુષ્ય તે વિશ્વેશ્વર મહાપ્રભુને પ્રાર્થના કરે છે—કે હે દેવ ! મારૂં મન સદા પવિત્ર વિચાર કરનારૂં થાય. તે અન્તર્યામી અમને સદા પવિત્ર અને શુભ બુદ્ધિવાળા બનાવે. અર્થાત્ અમારી બુદ્ધિમાં સદા પવિત્ર વિચારજ થતા રહે એવી કૃપા કરે.

તેમજ સર્વ શ્રેષ્ઠ ગાયત્રી મન્ત્રમાં પણ સર્વ જગદુત્પાદક સર્વાન્તર્યામી મહેશ્વર પરમાત્મા પાસે તેના શ્રેષ્ટ સ્વયંજ્યોતિ તેજના ધ્યાન દ્વારા, અમારી સદ્બુદ્ધિમાં પવિત્ર વિચારોની પ્રેરણા કરવા માટે પ્રાર્થના કરવામાં આવેલ છે. સાચો પ્રભુ પ્રેમી—ઉપાસક—ધન સ્ત્રી, પુત્ર, સમ્પત્તિ અને ઐશ્વર્ય માટે પરમેશ્વર પાસે પ્રાર્થના કરતો નથી. પણ પવિત્ર અને દૃઢ વિચારો માટે પ્રાર્થના કરે છે. પવિત્ર વિચાર એજ દિવ્ય જીવન છે. મલિન વિચાર એજ ભીષણ મૃત્યુ છે.

× × ×

ગન્દા અને તુચ્છ વિચારોમાં ફસી રહો નહિ. યાદ રાખો ! તે કાલા વિષધર સર્પથી પણ વધારે ભયંકર છે. જેમ તમારા સુવાના ઘરમાં આવેલા કાલા સર્પને તમે થોડો સમય પણ રહેવા દેવા ઇચ્છતા નથી પણ તેનાથી ભયભીત થઈ પ્રયત્નથી તેને તુરત કાઢી મૂકો છો. તેમજ તમે આ દુષ્ટ વિચારોને માનસ ભવનમાં થોડો સમય પણ રહેવા ન દો તેનાથી ભયભીત રહો તેને કાઢવાસારૂ ખૂબ કોશિશ કરો.

× × ×

સ્મરણમાં રાખોકે ! આ સંસારમાં એકલા આવ્યા છીએ અને એકલાજ જવાનું છે. આ ધ્રુવ સત્ય છે અમારો સંગ કોઇની સાથે નથી અમે અસંગ છીએ. આ અસંગ રૂપ ભાવનાથી સંસારમૂલ આ સક્તિનું છેદન કરો.

असंग शस्त्रेण दृढेन छित्वा ॥ गीता ॥

× × ×

સંસાર પરિવર્તનશીલ છે. દરેક પદાર્થ ક્ષણક્ષણમાં બદલાયા કરે છે. કોઈ આવે છે, કોઈ જાય છે. પુત્ર જન્મ્યો, મરી ગયો, ધન મળ્યું, નાશ પામ્યું, રોગ આવ્યો, આરોગ્યતા આવી, ગયા પણ ખરાં, આરીતે સંસારની સર્વ વસ્તુઓનું સતત પરિવવર્તન થતુંજ રહે છે, આ સર્વ જોતાં છતાં તેનાં સંયોગ વિયોગથી શોક કરવો દુ:ખી થવું, એ મૂર્ખતા નહિ તો બીજું શું? દેખતાં છતાં આંધળા થવું એજ મૂર્ખતા છે.

× × ×

દેહની તુચ્છ ભાવનાથીજ જીવ દુ:ખી થાય છે. આત્મ તત્ત્વની ઉદાર ભાવાનાથીજ મહાસુખી થાય છે. જીવ મટી શિવ થાય છે. દેહ ભાવના મહા પાપ છે આત્મભાવના મહાપુન્ય છે. કહ્યું છે કે—

देहात्मबुद्धिजं पापं समं गोवधकोटिभिः ।
ब्रह्माहं बुद्धिजं पुण्यं न भूतो न भविष्यति ॥

× × ×

સંસાર સક્ત મનુષ્ય સદ્ગુરૂના ઉપદેશનો યથાર્થ

સદુપયોગ કરી શકતો નથી. તેથી તે કદિ શાન્ત અને સુખી થતો નથી. ભલેં તે ગમે તેટલો પ્રયત્ન કરે. છતાં સંસારા સક્તિ દુઃખરૂપ છે. સર્વ દુઃખોની નિવૃત્તિનું સાધન અનાસક્તિ—યોગજ છે. આજ યોગ વિમલાનન્દમયી શાસ્વત શાન્તિ પ્રદાયિની માતેસ્વરી બ્રહ્મવિદ્યાની પ્રાપ્તિનું પ્રધાન સાધન છે.

× × ×

મહા આશ્ચર્યની વાત છે કે—સંસારની સર્વ વાતોમાં મનુષ્ય બહુજ સાવધાન રહે છે. બુદ્ધિમતાથી કામ કાઢે છે. પણ પોતાના કલ્યાણની વાતમાં અન્ધ થાય છે. અસાવધાન રહે છે. આ વાત કોયલાના કોથળાપર શીલ કરી તેની રક્ષા કરે, અને સોના મહોરોના કોથળાને બહાર મૂકી તેની કાળજી રાખે નહિ તેના કરતાં પણ વધારે મુર્ખતા ભરી છે.

× × ×

નાશવન્ત પદાર્થોની સાથે નાશવાન ઇન્દ્રિયોના સંયોગથી સુખી થવાની આશા બાંધી સતત પરિશ્રમ કરવો એ ભારે ભૂલ છે. ભોગવિલાસની સામગ્રી એકત્ર કરવામાં પોતાની સર્વ આયુને સમાપ્ત કરવી એ બુદ્ધિમતા નથી. ક્ષણભંગુર પદાર્થોથી શાસ્વત શાન્ત સુખ મળી શકતું નથી. સદા રહેનારા પદાર્થથીજ સદા રહેનારૂં સુખ પ્રાપ્ત થાય છે. સદા એકરસ રહેનાર તે કેવલ એક ચૈતન્યાનન્દ મહાસાગર–પરમાત્માજ છે. અને તેનોજ એક તરંગ આત્મા છે. તે એના યોગથીજ અખણ્ડ વિશુદ્ધ મહાનન્દ પ્રાપ્ત થાય છે એજ વૈદિક સિદ્ધાન્ત છે—

અયમાત્માબ્રહ્મ ।

× × ×

શંકા—ઇશ્વર કેવલ કલ્પના માત્ર છે. જો ઇશ્વર હોત તો અમને દેખાત અગર અમારા અનુભવમાં આવત પણ તેમ થતું નથી માટે ઇશ્વર નથી.

સમાધાન—ઈશ્વરનો અભાવ તમે કેવીરીતે નકકી કર્યો છે.? શું તમે સર્વજ્ઞ છો? અમે ઇશ્વરને કદિ જોયો નહિ, માટે તેનું અસ્તિત્વ નથી. એમ તો તમે સર્વજ્ઞ હો તોજ કહી શકો. સંસારમાં એવી બહુ વસ્તુઓ છે કે જેનું જ્ઞાન ઘણાને નથી. જેનુંજ્ઞાન ઘણા ને નથી છતાં તે વસ્તુઓ વિદ્યમાન છે. તેના હોવામાં સન્દેહ થઈ શકતો નથી તો પછી ઈશ્વરના અસ્તિત્વપર કેમ સન્દેહ કરવામાં આવે છે?

કદિ નાસ્તિકોના કહેવા પ્રમાણે ન પણ હોય તોપણ ઇશ્વરને માનનાર અને પૂજનાર આસ્તિક લોક વધારે નુકસાનમાં રહેશે નહિ. જેમ મનુષ્ય બીજાં ઘણાં નીરર્થક કામો કરે છે તેમ આપણ એક ભલેં કરે. કદિ આસ્તિકોના વિસ્વાસાંનુસાર જો ઈશ્વર વિદ્યમાન હશે તો, નાસ્તિકને બહુ નુકસાન જશે અને દુરાગ્રહનું ખરાબ પરિણામ ભોગવવું પડ શે.

× × ×

ઈશ્વરને મળવાની ઇચ્છા પ્રબલ કરો. જ્યારે તે લાલસા વધે છે ત્યારે તેને પૂર્ણ કરવા માટે મનુષ્ય પ્રબલ પ્રયત્ન કર્યા વિના શાન્ત રહેતો નથી.

× × ×

પ્રભુ પ્રેમી બનો, એકમાત્ર તેનેજ પોતાનો પરમ પ્રિય સમજો વિશ્વાસ રાખો, જ્યારે તમે તે પરમ પ્રેમાસ્પદ અંતર્યામી પ્રભુને મળવા માટે એક પગલું આગળ ભરશો. તો તે કૃપાનિધિ વિશ્વેસ્વર પ્રભુ તમારી તરફ હજાર પગલાં સામા આવશે. બસ તેમને મળવાની સાચી અને હાર્દિક ચાહના હોવી જોઇએ.

× × ×

પ્રભુ પ્રેમી તેને મેળવવા માટે વ્યાકુલ થઈ દોડતો ફરે છે. સંસારની મોહમમતા—જાલથી તેનું ચિત્ત નાસતું રહે છે. તમામ સંસાર તેને નીરસ સમજ્ઞય છે. તે સંસારથી મરી જવું એજ સુખનું દ્વાર સમજે છે.

કહ્યું છે કે—

જા મરિ એસે જગડરે, મેરે મન આનન્દ ।
કબ મરિહો કબ પાય હો, પૂરન પરમાનન્દ॥

સંસારથી સર્વથા ઉપરામ થઈ પ્રભુ સન્મુખથવું એજ પ્રેમીનું મરણ છે.

\+ \+ \+

॥ ॐ तत्सत्परमात्मने नमः ॥

पञ्चाग्नि विद्या

(लेखक—यति मुकुन्दाश्रम व्याख्यान वाचस्पति)

તે સ્વર્ગમાં કર્મ દેવતા કહેવાય છે. તે દેવ પ્રથમની આહુતિના પરિણામરુપ જળ તત્વની સ્વર્ગમાં—અગ્નિમાં-આહુતિ આપે છે. અર્થાત્ સ્વર્ગમાં પોતાના પુણ્ય ફળને સમર્પિત કરે છે. તેનુજ પરિણામ અથવા ફલ ચન્દ્રમા થાય છે. તે ચન્દ્રનુ ચન્દ્રત્વ આહુતિથી વૃદ્ધિંગત થઈ વિશેષે કરીને મનઃ પ્રસાદક થાય છે. પાર્થિવ દૂધ, ઘીનો ઉત્તમ અંશ હોમદ્વારા સૂક્ષ્મ જલ તત્ત્વરૂપમાં પરિણુત થઈ અગ્નિતત્ત્વ સહિત દિવલોક રૂપ અગ્નિમાં સૂર્ય સમિધાને પ્રજ્વલિત કરી ચન્દ્રના પ્રકાશને વધાર્યા કરે છે. આરીતે પ્રથમ આહુતિનુંફલ ચંદ્રમાં છે એ વેદનો વૈજ્ઞાનિક મત છે.

द्वितीयाहुतिः

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादनयो विस्फुलिङ्गाः। तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमं राजानं जुह्वति तस्या-हुतेर्वर्षं सम्भवति ॥

અર્થ—હે ગૌતમ ! આ બીજી આહુતિમાં વૃષ્ટિના હેતુ પર્જન્ય નામરૂપ અભિમાની દેવતાજ અગ્નિ છે. એ અગ્નિને પ્રજ્વલિત કરનાર વાયુ સમિધ્ છે, વાદલ ધૂમ છે, વિજલી જ્વાલા છે, અશનિ—ઇન્દ્ર દેવતાનું વજ્ર—અંગારા છે, મેઘમંડળમાં થનારો શબ્દ એ તણખા છે. આ પર્જ્યન-રૂપ અગ્નિમાં દેવતાઓ જ્યારે ચન્દ્ર તત્ત્વનો હોમ કરે છે. ત્યારે આદ્વિતીયા આહુતિથી વર્ષારૂપ ફળ ઉત્પન્ન થાય છે. કહેવાની અભિપ્રાય એ છે કે—જે બાષ્પાદિ રૂપથી પરિ-ણામ પામેલ આહુતિ સ્વર્ગાગ્નિમાં હોમાઇને ચંદ્ર સ્વરૂપમાં પરિણામ પામ્યા કરે છે તે ચંદ્રતત્ત્વનો। અંશ પ્રાણરૂપ સૂક્ષ્મ જલતત્વ જ્યારે પર્જન્ય અગ્નિમાં આહુતિરૂપે ઉક્તદેવ હોમે છે ત્યારે વર્ષારૂપ ફલ થાય છે.

तृतियाहुतिः

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः संवत्सर एव समिदाकाशो धूमो रात्रिरर्चिर्दिशाऽङ्गारा अवान्तर-दिशो विस्फुलिङ्गाः। तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौदेवा वर्षं जुह्वति तस्या आहुतेरन्नं संभवति ॥

અર્થ—આ ત્રીજી આહુતિમાં પૃથ્વીજ અગ્નિ છે. સંવત્સરમાં કાલ કારિત અનાજ સંપન્ન પૃથ્વી થાય છે. તેથી સંવત્સરસમિધ્ છે. આકાશ ધૂમાડો છે. પૃથ્વીસમાન પ્રકાશ રહિત હોવાથી. રાત્રિજ જ્વાલા છે. ચંચળતા રહિત હોવાથી દિશા અંગારા છે. ઈશાનાદિ ઉપદિશાઓ તણખા છે. આવા પ્રકારના પૃથ્વીરૂપ અગ્નિમાં દેવતાઓ વૃષ્ટિરૂપ આહુતિ નાખે છે.-હોમે છે. તેથી પ્રાણીઓનું ભક્ષ્ય બહુવિધ અન્નરૂપ ફલ થાય છે. બીજી આહુતિમાં જે સૂક્ષ્મ જળ તત્ત્વનો હોમ પર્જન્ય અગ્નિમાં થઈ ગયો છે તે વૃષ્ટિરૂપ પરિણામને પામીને તેજ તત્ત્વનો પૃથ્વી-રૂપ અગ્નિમાં ત્રીજી આહુતિ પડે છે. સ્થૂલ વૃષ્ટિમાં—જલમાં વ્યાપક તેજ સૂક્ષ્મ જલ તત્વ વિદ્યમાન છે. કે જેની સ્વર્ગ અગ્નિમાં આહુતિ થઇ ગઇ છે. કારણકે સ્થૂલ કાર્યમાં સૂક્ષ્મકારણ સદાં વ્યાપ્ત રહે છે.

तुरीयाहुतिः

पुरुषो वावा गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो धूमोजिह्वाऽर्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः तेस्मि-न्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या आहुते रेतः संभवति ॥

અર્થ—હે ગૌતમ ! આ ચોથી આહુતિમાં ચેતનતા યુક્ત મનુષ્ય શરીર (પુરુષ) જ અગ્નિ છે. એની સિધવાણી છે. મુખ અને નાક દ્વારા નિકળનારો શ્વાસ એ ધૂમાડો છે. જિહ્વા જ્વાલા છે. ચક્ષુ અંગારા છે. અને કાન વિસ્ફુ-

લિંગ છે. આ મનુષ્યરૂપ અગ્નિમાં પ્રાણાત્મક દેવલોક અન્નની આહુતિ આપે છે. તેનાથી રેત-વીર્ય ઉત્પન્ન થાય છે. અર્થાત્ ત્રીજી આહુતિમાં પરંપરા દ્વારા આવેલું સૂક્ષ્મ જળ તત્વ અન્નમાંથી વીર્યરૂપમાં પરિણત થઇ જાય છે. એનોજ સાર આઠમી ઓજસ્ ધાતુ કહેવાય છે. દરેક આહુતિમાં મૂળ તત્વ સૂક્ષ્મજલનું વિલક્ષણ પરિણામ થયા કરે છે.

पञ्चमाहुतिः

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एवस-मिद्यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः । तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः संभवति ॥

ભાવાર્થ—પાંચમી આહુતિમાં માનુષી સ્ત્રીજ અગ્નિ છે એ અગ્નિમાં ચેતનાત્મા દેવલોક શુક્રની આહુતિ આપે છે. તેનું ફલગર્ભ-મનુષ્ય શરીર બને છે.

આ પંચાગ્નિ વિદ્યામાં દેવલોક, પર્જન્ય, પૃથ્વી, પુરૂષ, અને સ્ત્રી એ પાંચ પ્રકારના અગ્નિ છે. શ્રદ્ધા, સોમ, વૃષ્ટિ, અન્ન અને શુક્ર એ પાંચ પ્રકારના હવિ—પદાર્થ છે. આ પાંચેમાં એકજ જળ પાંચ પ્રકારથી પરિણામ પામી રહેલ છે. પૂર્વોક્ત રીતે પાંચમી આહુતિ થતાંજ જલ તત્વ મનુષ્યરૂપ થઇ જાય છે. એ મનુષ્ય શરીર—ગર્ભ—૯—૧૦—૧૧—૧૨ માસ સુધી માતાના ગર્ભમાં રહી ઉલ્બ—ઓર—થી લપેટાઇ ઉત્પન્ન થાય છે. પુનઃ દ્વિજાતિ હોયતો ઉપનયનાદિપૂર્વક વેદાધ્યયન પછી વિવાહ કરીને અગ્ન્યાધાનકરી ફરીને અગ્નિ હોત્રાદિ કર્મ કરે છે. નિયત આયુઃ પૂર્ણ થતાં મૃત્યુ પામે છે એટલે પુત્રાદિ લોક સ્મશાનમાં લઈ જઇ આહવનીયાદિ અગ્નિદ્વારા અંતિમ સંસ્કાર કરે છે. કેમકે શ્રદ્ધાદિ આહુતિયોના ક્રમથી જે દેવાદિ અગ્નિદ્વારા મનુષ્યસ્વરૂપે આવ્યો હતો તેજ અગ્નિને સુપ્રત કરે છે. પુનઃ તે સ્વર્ગમાં જાય છે અને પાંચ આહુતિ દ્વારા પાછો આવે છે. આર્ય તે જીવાત્મ જન્મ મરણરૂપ અમાં કર્યજ કરે છે એનેજ પિતૃયાન—ગમનાગમન માર્ગ કહે છે. આસ્વર્ગીય માર્ગ પ્રાયશઃ ગૃહસ્થોને માટે બતાવેલ છે.

વિશેષે કરી વાનપ્રસ્થ અને સંન્યાસી સ્વકર્ત્તવ્યથી પતિત ન થાય તો દેવયાન માર્ગે જાય છે અને પુણ્યાત્મા ગૃહસ્થ પિતૃયાન માર્ગથી સ્વર્ગમાં જાય છે.

દેવયાન માર્ગથી ગતિ કરનાર—અર્ચિ, દિવસ, શુકલ પક્ષ, ઉત્તરાયણ, સંવત્સર, આદિત્ય, ચંદ્રમાં અને વિદ્યુત-આદિના અભિમાની દેવોને અધીન થઈ ક્રમશઃ કોઇ દિવ્ય પુરૂષ દ્વારા બ્રહ્મલોકમાં પહોંચે છે.

પિતૃયાન માર્ગથી જનારા—પુણ્યશાળી પુરૂષો ધૂમ, રાત્રિ, કૃષ્ણપક્ષ, દક્ષિણાયન, પિતૃલોક, આકાશ અને ચન્દ્રમા અભિમાની દેવતા દ્વારા ચંદ્રલોકમાં જઈ સોમ-તત્વરૂપ દિવ્ય શરીરધારી થાય છે. યદ્યપિ આ કર્માનુષ્ઠાન દ્વારા સ્વર્ગમાં જનારા આજાન દેવોના ભૃત્ય જેવા થાય છે. તથાપિ સ્વર્ગીય સુખ તેમને જરૂર મળે છે.

પંચાગ્નિ વિદ્યામાં કેવલ આહુતિ દ્રવ્યનાં શ્રદ્ધાદિ પાંચ વિધ પરિણામ બતાવેલ છે. અને યજમાનની ગતિનું વર્ણન કરેલું છે ધૂમાદિ માર્ગથી સ્વર્ગમાં જનાર જ્યાં સુધી તેનું અપૂર્વ પુણ્યફલ ક્ષિણ ન થાય ત્યાં સુધી સ્વર્ગમાં નિવાસ કરે છે અને સુખભોગથી પુણ્ય પરવારતાં નિમ્ન સૂચિત માર્ગથી પાછો ભૂમંડળમાં આવે છે.

ચંદ્ર મંડલમાં તેનું જે સૂક્ષ્મ દિવ્ય શરીરા રંભક સૂક્ષ્મ જલ તત્વ છે. તે ઉપભોગના હેતુ કર્મક્ષીણ થતાં આકાશમાં લય પામે છે, આકાશ રૂપાન્તર થઇ વાયુ બને છે, પછી તે ધૂમરૂપ બની મેઘ—સ્થૂલ મેઘનું કારણ સૂક્ષ્મ વાદલરૂપ થઇ વરસે છે. એટલે તેમાં રહેલો જીવ વૃષ્ટિ દ્વારા વ્રીહિ, યવ, ઓષધિ, વનસ્પતિ, તલ, અડદ, તૃણ વગેરે રૂપમાં પૃથ્વીપર ઉત્પન્ન થાય છે. સ્વર્ગમાંથી ચ્યુત થએલો જીવ નદી, સમુદ્ર, પર્વત, દુર્ગમસ્થલ, મરૂદેશાદિ વિષમસ્થલમાં પણ વૃષ્ટિ દ્વારા પડે છે. એ ઝંઝટમાંથી તેને છૂટી મળવી મુશ્કેલ પડે છે. કારણકે વિષમ સ્થલનો જલ પ્રવાહ કોઇ નાળામાં; ત્યાંથી નદીમાં, અને છેવટ સમુદ્રમાં પડે છે. તે પ્રવાહ પતિત તે સાથે ત્યાં જાય છે.

[ક્રમશઃ]

શ્રીમત્પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય્ય-અદ્વૈત બ્રહ્મવિદ્યા માર્તણ્ડ બ્રહ્મનિષ્ઠ
સ્વામી શ્રીજયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મણ્ડલેશ્વર લિખિત

योगतत्त्व-मीमांसा

ઉપાય પૂછી. ભીષ્મને નમસ્કાર કરી અર્જુન અને શ્રીકૃષ્ણ-પોતાના તંબુમાં આવ્યા-અને પ્રાતઃકાલ થતાંજ યુદ્ધનો આરંભ કર્યો. અર્જુને શિખંડીને આગળ કરી ભીષ્મજી સાથે યુદ્ધનો આરંભ કરી દીધો. શિખંડીએ એક સાથે ભીષ્મની છાતીમાં બાર બાણો માર્યાછતાં ભીષ્મે. તો શિખંડી તરફ નજર સરખી પણ કરી નહિં. તેઓ તો કેવલ અર્જુન અને પાંડવની સેના ઉપરજ બાણોની વૃષ્ટિકરી રહ્યા હતા. છેવટ ભીષ્મે મહાધૈર્ય ધારણ કરીને શિખંડી ને કહ્યું. 'તમે ગમે તેમ કરોપણ હું તમારાપર હાથ ઉપાડીશ નહિ. કારણકે તમે જન્મની સ્ત્રી છો' તેના ઉત્તરમાં શિખંડીએ પોતાનું પ્રથમનું વૈર યાદ કરીને કહ્યું કે 'તમે મારી સાથે લડો અગર ન લડો પણ આજ મારા હાથથી આપનું કલ્યાણ નથી' એમ કહી તેણે વિશેષ વેગથી બાણો ચલાવવાનો આરંભ કરી દીધો પણ બ્રહ્મચારી વીર ભીષ્મ તેથી જરાપણ ચલાયમાન થયા નહિં. શિખંડીના બાણોથી ભીષ્મ વિદીર્ણ થતા હતા છતાં તે સમયે તેમણે દશ હજાર સ્વાર સાત મહારથી, ચૌદ-હજાર પૈદલ, એક હજાર હાથી, દશ હજાર ઘોડા, અને વિરાટ્ રાજાના ભાઇને મારી નાખ્યા. બીજી તરફ એશરાઃ શિખંડી ભીષ્મના શરીરને ચારણી બનાવી રહ્યો હતો. ભીષ્મના શરીરમાં બે આંગળપણ એવી જગા નહોતી કે જે ઘા લાગ્યો નહોય. એ રીતે ઘાયલ થઇને સૂર્ય અસ્તની સાથે મહાબલવાન્ ભીષ્મ ધરાશાયી થયા. અર્થાત્ રથ-માંથી નીચે પડી ગયા. તેમના પડવાથી કૌરવ સેનામાં હાહા-કાર મચી ગયો.

લોકો મરતી વખતે કોમલ બિછાવનાપર સુવે છે. પણ ભીષ્મે તો શરશય્યાપર શયન કર્યું. તે વખતે બેઉ બાજુ-ના અર્જુન દુર્યોધન વગેરે મોટા મોટા યોદ્ધાઓ હાથ જોડી ભીષ્મની સામે ઊભા રહ્યા. તેઓને જોઈ ભીષ્મ બોલ્યા વીરો! જુઓ મારૂં માથું નીચે લટકે છે. માટે મને એક તકીઓ લાવી આપો. વચનના મર્મને નહિ સમઝનાર દુર્યોધનાદિ રાજાઓ રેશમી અને નરમ નરમ તકીઆ લાવ્યા અને ઢગલો કર્યો. તે જોઈ ભીષ્મે હસીને કહ્યું ભાઇ આ તકીઆ તો મારે લાયક નથી. બેટા અર્જુન ! તું આ શય્યાને લાયક તકીઓ લાવી શકીશ ? બુદ્ધિમાન્ અર્જુન તેમના અભિપ્રાયને સમઝી ગયો. અને ત્રણ બાણ તેમના કપાલમાં એવી રીતે માર્યાં કે તેમનું મસ્તક ઉંચું થઈ ગયું. ભીષ્મ બહુજ પ્રસન્ન થયા અને કહ્યું વીર અર્જુન ! તેં ઠીક તકીઓ ગોઠવી દીધો. તારૂં કલ્યાણ થશે. હું સૂર્ય ઉત્તરાયણના નહિ થાય ત્યાં સુધી શરીર ત્યાગ કરીશ નહિ.

એટલામાં દુર્યોધન અનેક પ્રસિદ્ધ વૈદ્યોને બોલાવી લાવ્યો. તેઓને જોઈ ભીષ્મ બોલ્યા ભાઈ મારે હવે ઔષ-ધની જરૂર નથી. કારણકે હવે મારો મરવાનો સમય પાસે આવી પહચ્યો છે. કેવલ એક ગ્લાસ ઠંડું પાણી પીવરાવો. દુર્યોધન દોડયો સુંદર મીઠાઇ અને શીતલ જલ લઈ આવ્યો. તે જોઇ મહાત્મા ભીષ્મ કહેવા લાગ્યા. હવે અંત સમયમાં હું આવા જલનું પાન કરીશ નહિં. હે અર્જુન ! યોગ્ય શય્યા અને યોગ્ય તકીઓ તેં આપેલ છે તો યોગ્ય જલ પણ તુંજ પા. અર્જુન ભીષ્મના મનની વાત સમઝી ગયો. શીઘ્ર ગાંડીવ ધનુષ્ય ઊઠાવી ભીષ્મની જમણી બાજુમાં એક બાણ માર્યું. બાણ મારતાંજ પૃથ્વી ફાડી અમૃત સમાન મધુર અને શીતલ ગંગાની ધારા નીકલી એ ભીષ્મના મુખમાં પડવા લાગી. એજ ધારાનું નામ બાણ ગંગા પડયું જે આજે પણ કુરૂક્ષેત્રમાં પ્રસિદ્ધ છે.

ભીષ્મે અર્જુનને ફરીને પણ આશીર્વાદ આપ્યો.

અને દુર્યોધનને કહેવા લાગ્યા. બેટા દુર્યોધન! તેં બુદ્ધિમાન વીરઅર્જુનનું કર્તવ્ય જોયું? આ વખતે આ પૃથ્વી ઉપર તેના સમાન બીજો કોઇ વીર નથી. હજુપણ તું જા સલાહ કર. જો નહિ કરે તો જરૂર તારૂં મૃત્યુ પાસે આવ્યું છે.

કૌરવાદિ નાશક મહાભારતનો ભીષણ સંગ્રામ સમાપ્ત થઈ ગયા પછી મહારાજા યુધિષ્ઠિરાદિ પાંડવો પુનઃ ભીષ્મની પાસે ગયા. અને સદુપદેશને માટે પ્રાર્થના કરી. વિનંતી સાંભળીને ભીષ્મજીએ શરશય્યામાં પડયાં પડયાં યુધિષ્ઠિરાદિક પ્રતિ ધર્મ રહસ્ય, નીતિ, રાજધર્મ, ભગવદ્ભક્તિ, તત્ત્વજ્ઞાન વગેરેનો અનેક પ્રકારથી ઉપદેશ આપ્યો. તેને ભગવાન્ વ્યાસે મહાભારતમાં જેવોને તેવો ગુંથ્યો છે. બ્રહ્મચર્યના વિષયમાં ભીષ્મજીએ યુધિષ્ઠિરને કહેલું છે.

आजन्ममरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह ।
न तस्य किंचिद प्राप्य-मिति विद्धि नराधिप !॥

હે નરાધિપ! યુધિષ્ઠિર! જન્મથી લઇને મરણ સુધી જે મનુષ્ય આ સંસારમાં પૂર્ણ બ્રહ્મચારી રહે છે. તેને બ્રહ્મચર્યના પ્રભાવથી કોઈ પણ વસ્તુ અપ્રાપ્ત રહેતી નથી. તે તમે નક્કી જાણો—

सुखं दान्तः प्रस्वपिति सुखं च प्रतिबुध्यते ।
सुखं पर्येति लोकांश्च मनश्चास्य प्रसीदति ॥

ઇન્દ્રિ નિગ્રહ કરનાર બ્રહ્મચારીજ સુખથી સુવે છે. અને સુખથી ઉઠે છે. લોકમાં સુખથી ઘુમે છે. અને તેનું મન સર્વદા પ્રસન્ન રહે છે. અર્થાત્ અસલી બ્રહ્મચારીના મનમાં મોહ અને શોકનો પ્રવેશ થઇ શકતો નથી. તેથી તે શાન્ત અને આનન્દ સમુદ્રમાં સદા નિમગ્ન રહે છે.

अदान्तःपुरुषःक्लेशमभीक्ष्णं प्रतिपद्यते
अनर्थांश्च बहूनन्यान् प्रसृजत्यात्म दोषजान् ॥

બ્રહ્મચર્યના અભાવથીજ મનુષ્ય અનેક ક્લેશોનો અનુભવ કરે છે. અને બ્રહ્મચર્યાભાવરૂપ દોષથી અનેક પ્રકારના અનર્થોને ઉત્પન્ન કરે છે.

વગેરે શ્લોકોથી ભીષ્મજીએ બ્રહ્મચર્ય પાલનનો ઉપદેશ આપ્યો છે. જ્યારે ભીષ્મજીની અમૃતમય વાણીથી યુધિષ્ઠિરાદિના મનનું સારી રીતે સમાધાન થઈ ગયું ત્યારે ભીષ્મે પોતાનું વ્યાખ્યાન સમાપ્ત કર્યું. પછી યુધિષ્ઠિરાદિને આશીર્વાદ આપીને બોલ્યા—યુધિષ્ઠિર! તમે તમારી રાજધાનીમાં જાઓ. અને સૂર્ય ઉત્તરાયણના થાય ત્યારે એકવાર મને મળી જજો. એટલું બોલી ભીષ્મ ચૂપ થઈ ગયા. અને મનમાં ઇશ્વરનું ધ્યાન કરી તેમણે પોતાના નેત્રો બન્ધ કરી દીધાં–પછી યુધિષ્ઠિરાદિએ તેમના ચરણની રજ પોતાના માથા પર ચડાવી અને પછીથી હસ્તિનાપુર તરફ પાછા ફર્યા.

થોડા દિવસ પછી યુધિષ્ઠિરે જોયું કે માઘ શુક્લ પક્ષ આવ્યો. સૂર્યની ઉત્તરાયણ ગતિ અને ભીષ્મની સ્વર્ગગતિનો આજ સમય છે. તેથી તેમણે પુરજનો અને પુરોહિતોને સાથે લઈ વિવિધ રત્ન, ઘી, ગંધદ્રવ્ય રેશ્મી વસ્ત્ર અને ચન્દન વગેરે ગાડામાં ભરી યુદ્ધક્ષેત્રની યાત્રાનો વિચાર કર્યો. ધૃતરાષ્ટ્ર, વિદુર, શ્રીકૃષ્ણ, સાતકી, સંજય અને પાંડવોપણ તેઓની સાથે ભીષ્મના દર્શન કરવા ચાલ્યા.

ત્યાં જઇ તેઓએ મહાત્મા ભીષ્મને પ્રણામ કર્યો. પછી ભીષ્મની શય્યાની ચારે બાજુ તે લોકો બેસી ગયા. એટલામાં નારદ, વ્યાસ વગેરે મહર્ષિઓ પણ આવી પહોંચ્યા–તેમણે ભીષ્મને અનેક ધર્મ સમ્બન્ધી ગૂઢ વાતો કહી. પછી યુધિષ્ઠિરને ભીષ્મ કહેવા લાગ્યા–તમારા આવવાથી મને બહુ સુખથયું આ શરશય્યાપર પડયા પડયા અઠ્ઠાવણું દિવસ વીતિ ગયા. ઇશ્વર કૃપાથી હવે માઘ માસ આવ્યો. હે મહોદય ગણ! આપ આજ્ઞા આપો તો હવે હું મારૂં શરીર ત્યાગ કરૂં. અન્તમાં મારો ઉપદેશ એ છે કે 'તમે સત્યના માર્ગનો ત્યાગ કરશો માં' સત્યની બરાબર કોઇ ધર્મ કે તપ નથી. સત્યનું અપાર બલ છે. સત્યનો જય સર્વદા થતો રહેશે. સત્ય એજ બ્રહ્મચર્ય અને જૂઠએ વ્યભિચાર છે. અતઃ તમે સત્યપથપર અટલ રહી જૂઠથી ડરતા રહેજો.

[ક્રમશઃ]

स्वामी दयानन्द अने महाशिवरात्रिनो बोधोत्सव

मूर्ति पूजा देवालयादिनी वैदिक प्राचीनता

"प्राणो हवा सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणिति यच्च न"
(અથર્વ ૧૧।૪।૧૦)

આ મન્ત્રથી પ્રસ્તરમાં પણુ પ્રાણુશક્તિ સિદ્ધ થાય છે.

"पातुग्रावा" અથર્વ ૬।૩।૨। માં પત્થર પાંસેથી સ્વરક્ષાની પ્રાર્થના છે. **"महिमा ते पृथिव्याम्"** અથર્વ ૬।૮૧।૩। માં અગ્નિસ્વરૂપ પરમાત્માનો પૃથિવિમાં પણુ મહિમા હોવાથી સર્વ પૃથ્વીની પૂજા કરવી અશક્ય હોવાથી તેના ૧ અંશ પત્થરથી પૂજા કરાય છે.

शं ना ग्रावाणः અથર્વ૦ ૧૯।૧૦।૭ તથા ઋગ્વેદ ૭।૩૫।૭ માં પાષાણુથી કલ્યાણુની પ્રાર્થના કરાઇ છે.

यो व आपो पामश्मा पृश्निर्दिव्योऽप्स्वन्तर्यज्ञुष्यो देवयजनः। અથર્વ૦ ૧૦।૫।૨૦। માં પત્થરને દેવપૂજામાં લેવામાં કહ્યું છે.

"यस्य भूमिः प्रमा" અથર્વ૦ ૧૦।૭।૩૨। **यो विश्वस्य प्रतिमानंबभूव** અથર્વ ૨૦।૩૪।૯। માં પરમાત્માનું પ્રતિમાં–મૂર્તિસ્વરૂપત્વ કહ્યું છે.

प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा चावेद्या च वर्हिषा।
ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे॥
(યજુઃ ૧૮।૬૩)

આ મન્ત્રમાં પ્રસ્તરાદિ દેવોની યજ્ઞ (પૂજા) થાય છે એમ લખ્યું છે. (યજનો અર્થદેવ પૂજાદિ થાય છે) **"प्रवर्त्तय दिवोऽश्मानमिद्र !"** અથર્વ ૮।૪।૧૯। તથા **ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षसः** અથર્વ૦ ૮।૪।૧૭।તથા ઋગ્વેદ ૭।૧૦૪।૧૭ માં પ્રસ્તરમાં રાક્ષસોને હનન કરવાની શક્તિ હોવાથી પ્રાર્થના કરાઈ છે.

ग्रावाणो ! अप दुच्छुना मप सेधत दुर्म्मतिम्। ઋગ્વેદ ૧૦।૧૭૫।૨। માં પત્થરોથી દુર્મતિ દૂર કરવાની પ્રાર્થના કરાઇ છે.

સ્વામી દયાનન્દજીએ **"बृहद् ग्रावासि"** યજુઃ ૧।૧૫। નો અર્થ "મોટો પત્થર છે" એમ કર્યો છે. એથી ગ્રાવશબ્દનો વેદમાં પ્રસ્તર અર્થ પણુ જણાય છે, ઋગ્વેદાદિમાં ગ્રાવદેવતાના સૂક્તો પણુ જણાય છે — **ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा** અથર્વ૦ ૧૨।૩।૨૧। **ग्रावाणो अपसेधत दुर्म्मतिम्।** ઋગ્વેદ ૧૦।૧૭૫।૨। માં દેવતા પણુ પત્થરો હોય છે એમ કહ્યું છે, એથી ગ્રાવ સ્તુતિ વૈદિક છે, **तेवा एतेऽश्ममया ग्रावाणो भवन्ति......तस्यैतच्छरीरं यद्गिरयो यदश्मानः तच्छरीरेणैवैनमेतत् समर्धयति** શતપથ ૩।૯।૪।૨। **ग्रावाणः......महीयन्ते** ઋગ્વેદ ૧૦।૭૫।૩। (મહીઙ્ ધાતુનો અર્થ પૂજા છે) આથી પ્રસ્તર પૂજા વૈદિકી છે, **अश्मा च मे मृत्तिका च... यज्ञेन कल्पन्ताम्** યજુઃ ૧૮।૧૩। માં અશ્મા, મૃત્તિકા, ગિરિ, પર્વત, રેતિ, વનસ્પતિ, સોનું, ચાંદી, લોખંડાદિની મૂર્તિઓ દેવપુજા માટે વેદે કલ્પિ છે, શતપથમાં અનેક સ્થળે સૂર્ય ચન્દ્રાદિની મૂર્તિઓમાં પરમાત્માની પૂજા બતાવાઈ છે, વેદોમાં **योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।** યજુઃ ૪૦।૧૭ ના છેલ્લા મન્ત્રમાં સૂર્યમાં પરમાત્મનો નિવાસ કહ્યો છે.

उद्यते मम उदायते नम उदितायनमः।
(અથર્વ૦ ૧૭।૧।૨૨।)

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमितायनमः।
(અથર્વ૦ ૧૭–૧।૨૩ માં)

સૂર્ય મૂર્તિપૂજા છે, **त्वंसूर्यं न आभज। आम० उत्त०** ૭।૨।૧૫ સંસ્કાર વિધિમાં પૃ૦ ૧૫૪ માં સૂર્ય પૂજા પ્રાર્થના છે, "આર્યસમાજકા ઇતિહાસ" પુસ્તકના બીજા ભાગના ૩૫૯ માં પૃષ્ઠમાં આર્યસમાજી વિદ્વાન નરદેવશાસ્ત્રીએ લખ્યું છે કે તે વખતે દયાનન્દ સ્વામીનું મન્તવ્ય એ હતું કે......

(ક્રમશઃ)

ग्राहकोंको-सूचना

मनीआर्डर तथा वी० पी० के रुपैये भेजनेका पूरा पता—

स्वा० बालानन्दजी विश्वनाथ व्यवस्थापक

अपारनाथ मठ, ढुण्ढिराज गणेश

(काशी) बनारस सिटी

इस पूरे-पतेसे ही ग्राहक-अनुग्राहकोंको वार्षिक चन्देके रुपैये भेजने चाहिये—

विश्वनाथके उद्देश्य और नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं धर्म सम्बन्धी विषयों द्वारा जनता जनार्दनकी सेवा करना, और उपरोक्त विषयों पर पुनः पुनः विवेचन करना इसका मुख्य उद्देश्य है ।

नियम

(१) यह पत्र प्रत्येक मासकी शिवरात्रि (कृष्ण चतुर्दशी) को प्रकाशित होता है । विश्वनाथका वर्ष फाल्गुनकी महाशिवरात्रिसे आरम्भ होकर माघमें समाप्त होता है ।

(२) इस पत्रके हिन्दी विभागका डाकव्ययके सहित वार्षिक मूल्य २) रु० और गुजराती विभागका २॥) रु० मात्र भारतवर्षके लिये है, वार्षिक मूल्य अग्रिम लिया जायगा । लायब्रेरी, छात्र एवं धार्मिक संस्थाओंको केवल १॥) में दिया जायगा । एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते ।

(३) कार्यालयसे विश्वनाथपत्र २-३ बार जाँच करके भेजा जाता है । परन्तु किसी कारणवश किसी मासका विश्वनाथ ठीक समयपर न पहुँचे तो ग्राहकोंको अपने २ डाकघरसे ही प्रथम पूछताछ करनी चाहिये । डाकघरसे मिला हुआ उत्तर उसी महीनेकी पूर्णमासीके भीतर कार्यालयमें आजाना चाहिये । जिससे ग्राहकोंकी सेवामें न पहुँचा हुआ अंक भेज सकें ।

(४) इस पत्रमें किसी प्रकारके विज्ञापन किसी भी दरपर स्वीकार न किए जाँयगे ।

(५) जो महानुभाव कमसे-कम एकबार १२५) रु०से इस पत्रकी सहायता करग, वे महानुभाव स्थायी संरक्षक माने जायेंगे। और जो महानुभाव कमसे-कम २५) रु० सहायता देंगे, वे इस पत्रके संरक्षक माने जायेंगे । तथा जो भगवद्भक्त कमसे-कम ५) सहायता देंगे, वे भी इस धार्मिक पत्रके सहायक माने जायेंगे । और वर्षमें एक दफे पत्रमें संरक्षक व सहायकोंकी नामावली प्रगट की जायगी ।

(६) थोड़े समये केलिये पता बदलवाना होतो अपने पोस्टमास्टरकोही लिखना चाहिये । अधिक समयके लिये पता बदलनेकी सूचना हिन्दी महीनेकी पूर्णमासी तक कार्यालयमें आजानी चाहिये ।

(७) ग्राहकोंको अपना नाम पता साफ साफ लिखते हुए ग्राहक नम्बर पत्र-व्यवहार करते समय अवश्य लिखना चाहिये, और पत्रोत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना जरूरी है ।

(८) मनीआर्डर भेजते समय मनीआर्डरके कूपन पर रुपयोंकी तादाद, भेजनेका मतलब, पूरा नाम मय पता, ग्राहक नम्बर आदि सब बातें साफ साफ लिखनी चाहिये । प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि **'व्यवस्थापक-विश्वनाथ पत्र'** के नामसे तथा लेख परिवर्तनके पत्र और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **'सम्पादक-विश्वनाथ पत्र' विश्वनाथ-पत्र कार्यालय ढुण्ढिराज गणेश, बनारस सिटी** के नामसे भेजने चाहिये ।

(९) विश्वनाथमें छपनेवाले लेख लेखकोंकी ही जिम्मेवारी पर छपेंगे ।

Regd. No. A. 2865

आनन्दमय-जीवन

'राम' के समक्ष क्या ही अच्छे आनन्द-भरे 'ॐ' के सुरीले और मस्त राग गाए जा रहे हैं, जहाँ दुःख और दर्दके आवाजकी बिलकुल पहुंच नहीं। 'राम' अपनी महिमामें मस्त है। आनन्द ही आनन्द चारों ओरसे उमड़ाचला आरहा है। जिसकी खोजमें सारा संसार भटकता फिरता है, वह आनन्द 'राम के सामने आकर हाथ जोड़े सेवामें खड़ा होगया। और स्वीकार करने लगा कि 'निःसन्देह मैं वही आपका अपना आप हूँ, आप ही से प्रकट हुआ हूं, नहीं नहीं आप ही मैं हूँ। ऐ जिज्ञासुओ! मैं हर स्थान पर तुम्हारे साथ हूँ, तुम्हारी आंखोंमें मैं प्रकाशमान हूँ, और तुम्हारे हृदयोंमें मैं छुपा हुआ हूँ, यह जुदाई तुम्हारी समझकी भ्रान्तिसे है। वास्तवमें तुम्हारे साथ मेरा सम्बन्ध जल और तरङ्गकी तरह है।

सुख और दुःख

भौतिक-पदार्थोंको सत्य समझना और उनमें आसक्ति रखना ही दुःखोंको निमन्त्रण देकर बुलाना है। दुःख हमें सूचित करते हैं कि—भौतिक पदार्थ मिथ्या हैं, अतएव बाह्यसांसारिक नामरूपों पर आसक्त होकर हमें अपना अमूल्य समय और अपनी दैवी शक्ति नष्ट न करनी चाहिये। आप पर दुःख इस लिये आता है कि आप भीतरके दिव्य स्वतन्त्रानन्दका अनुभव करें।

सुख हमें उसी समय मिलता है, जिस समय हम अपने भीतरके आत्मदेवका अनुभव करते हैं, समस्त विश्वके साथ अपनी स्वाभाविक-एकतामें निमग्न होते हैं। अतएव हमें सभी सुख सूचित करते हैं कि—आप सदा साम्यावस्थामें रहें।

इसप्रकार सभी दुःख और सुख आपको वेदान्तका पाठ पढ़ाते है। दुनियां इस सत्यका अनुभव नहीं करती है, इसलिये दुःखी है। सत्यका अनुभव करो आपको सुख अवश्य मिलेंगे ही।

अनुभव-सन्देश

खुल्लमखुल्ला मैं यह कहता हूँ, इसके कहनेसे मैं प्रसन्न हूँ, मैं प्रेम-रसिक हूँ, शान्तिसे लबालब भरपूर हूँ, ईश्वरीय प्रकाश प्रतिक्षण सर्वत्र चमक दमक रहा है, उन्मत्त हुआ मैं फिरता हूँ, विश्व की चिन्तासे विनिर्मुक्त हूँ, विपत्तिसे बिलकुल नहीं घबराता हूँ, और 'ॐ'का आनन्द भरा गीत गाता रहता हूँ।

—स्वामी रामतीर्थ

मुद्रक—प्रकाशक स्वामी मोहनानन्द। काशी विश्वनाथ प्रेस, ढुण्ढिराज गणेश, बनारस सिटी।